लालचन्द अमरडिनोमल

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ – रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

लालचन्द अमरडिनोमल

लेखक
मुरलीधर जैतली

अनुवादक
राधाकिशन चाँदवाणी

साहित्य अकादेमी

Lalchand Amardinomal : Hindi translation by Radhakishan Chandwani of M. K. Jetley's monograph in Sindhi. Sahitya Akademi, New Delhi (1992) Rs. 15.

प्रथम संस्करण १९९२

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

विक्रय विभाग: 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, २३ ए/४४ एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता ७०० ०५३
१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०० ०१४
३०४-३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास ६०० ०१८
१०९, जे. सी. मार्ग, बंगलौर ५६० ००२

मूल्य : पंद्रह रुपये

ISBN 81-7201-353-1

लेजरसैटिंग : मैरिट ग्राफ़िक्स, नयी दिल्ली ११० ०२८
मुद्रक : एवन ऑफसेट प्रिन्टर्स, नयी दिल्ली 110 002

भूमिका

श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी, सिन्धी के उन महान् गद्य लेखकों में से एक हैं, जिन्होंने अनुमानतः अर्ध शताब्दी तक सिन्धी गद्य को उन्नत किया, उसे सजाया-संवारा और एक नयी राह दिखाई। वे मेरे आदर्श लेखकों में से एक हैं। इसलिए जब मुझे उन पर लिखने के लिए कहा गया तब मुझे स्वाभाविक प्रसन्नता हुई।

कार्य आरम्भ किया। पर उसका मुहूर्त ही किसी ऐसी घड़ी में हुआ था कि विघ्न पर विघ्न पड़ने लगे। एक बाधा को दूर करुँ तो ऊपर से दूसरी तैयार। प्रथम तो, लालचन्दजी के जीवन से सम्बन्धित पूर्ण वास्तविकताएँ लिखित रूप में कहीं उपलब्ध ही न हों। सिन्धी साहित्य से सम्बन्धित पुराने कार्यालयों में ढूँढ-ढूंढकर कर लालचन्दजी की लिखित रचनाओं का विवरण तैयार किया। उन्हें प्राप्त करने के लिए इधर-उधर बहुत हाथ मारे, पर कहीं मिलें ही नहीं। भारत में सिन्धी साहित्य की स्थिति यह है कि अर्ध शताब्दी पूर्व प्रकाशित रचनाएँ भी नहीं मिलतीं। गत शताब्दी की तो बात ही क्या करें। फिर, यहाँ न तो ऐसे कोई केन्द्रीय पुस्तकालय हैं, जहाँ सिन्धी साहित्य के पुराने अनमोल रत्न सुरक्षित हों। श्री लालचन्द के सब संगी-साथी और उनके शिष्य आदि जो आज हमारे साथ हैं, मैं उनसे मिला तथा लालचन्दजी के जीवन से सम्बन्धित वास्तविकताओं को अधिकांशतः उनसे एकत्रित किया। परन्तु लिखित रचनाओं के रूप में उनके पास भी कुछ नहीं है। यश की भागी हैं लालचन्दजी की सुपुत्री श्रीमती देवी रामचन्द गुलराजाणी, जिन्होंने अपने पिताश्री की, तथा अपने श्वसुर श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी की कई अमूल्य रचनाएँ, प्रकाशित चाहे अप्रकाशित, अपने प्राणों से भी अधिक संभालकर रखी हैं। उनसे उनके पिता का बहुत सा विश्वसनीय वृतान्त भी ज्ञात हुआ। जो रचनाएँ उनके पास संभालकर रखी हुई थीं वे भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे सौंप दीं। परन्तु फिर भी बहुत सी सामग्री प्राप्त करनी अभी शेष थी। लालचन्दजी की शेष रचनाओं को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त दौड़धूप करता रहा। अन्ततः कोई रचना कहीं से, और कोई कहीं से प्राप्त कर पुस्तक का रूप प्रदान किया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक चिड़िया तिनका-तिनका जोड़कर अपना घोंसला बनाती है।

मैं आभारी हूँ उन सभी साथियों का, जिन से मुझे लालचन्दजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली बहुत सी वास्तविकताओं की जानकारी प्राप्त हुई। मैं आभारी हूँ

उन सभी का जिन्होंने मुझे लालचन्दजी की रचनाएँ उपलब्ध करवाकर मेरा कार्य सरल बना दिया। जैसा कि इन महान लेखक की कई रचनाएँ अप्राप्य हैं, इस कारण प्रयास कर उन रचनाओं के कुछ अंश उदाहरण स्वरूप यहाँ दिए गए हैं, जिससे कि पाठकगण उनका आनन्द उठा सकें। हम सिन्धियों का यह कर्तव्य बनता है कि हम "कुलयात लालचन्द" (लालचन्द समग्र रचनाएँ) प्रकाशित करवाकर उपलब्ध कराएँ, जिससे कि सरलतापूर्वक हर व्यक्ति इस महान लेखक के साहित्यिक सृजन से भली-भांति अवगत हो सके।

जिस समय यह पुस्तक अजमेर में छप रही थी और मैं दिल्ली में बैठा इसके 'प्रूफ़' जांच रहा था तो बम्बई से यह दुखदायी समाचार प्राप्त हुआ कि लालचन्दजी की सुपुत्री श्रीमती देवी का स्वर्गवास हो गया है। उस महानात्मा देवी ने अपने पिता की वर्षों से संभालकर रखी हुई रचनाएँ मुझे सौंपकर मानो अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी। जैसी परमपिता परमात्मा की इच्छा ! यह पुस्तक उस महानात्मा को सादर समर्पित करता हूँ।

डी १२७, विवेक विहार
दिल्ली ११००९५

मुरलीधर जैतली

७-१२-१९८४

क्रम

अध्याय प्रथम

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी बीसवीं शताब्दी के उन प्रसिद्ध सिन्धी साहित्यकारों में से एक थे, जिन्होंने सिन्धी गद्य को न केवल अपने अनोखे अक्षर-विन्यास से संवारा-सजाया, अपितु उसमें अभिव्यक्ति की अद्भुत समर्थता भी उत्पन्न की। सिन्धी के एक प्रसिद्ध गद्य लेखक श्री आसानन्द मामतोरा ने श्री लालचन्द के स्वर्गवास होने पर उन्हें श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए लिखा है कि, "श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी के देहान्त से सिन्धी गद्य का उच्चकोटि का साहित्यिक दौर समाप्त हो गया। सिन्धी गद्य के इतिहास में यह समय बहुत महत्व रखता है और इसका अन्तिम सितारा आज आँखों से ओझल हो गया। इस समय में सिन्धी गद्य फलफूल कर परवान चढ़ा। भविष्य की आने वाली पीढ़ियाँ उस पर गर्व करेंगी।" वे लालचन्दजी की तुलना बरगद के विशाल वृक्ष से करते हुए लिखते हैं, "आज जब मैं उनकी जीवनी तथा रचनाओं पर विचार करता हूँ तो मेरे सम्मुख भारतवर्ष का प्राचीन प्रसिद्ध वृक्ष बरगद आ खड़ा होता है। लम्बा-चौड़ा, अडोल, जिसकी डालियां आशीर्वाद स्वरुप चारों ओर फैली हुई ! बरगद के समान उनकी जड़ें भी मज़बूती से पृथ्वी में गड़ी हुई थीं। इसी कारण ही उनकी साहित्यिक उठान सदा वास्तविकता पर आधारित होती थी। इसी विशाल वृक्ष की छाया तले अर्ध शताब्दी तक हम सिन्धी पलते रहे हैं।"

निःसन्देह, लालचन्दजी बरगद के विशाल वृक्ष थे। उनके सहारे से कई युवा लेखक उभरकर सामने आए, जिन्होंने आगे चलकर सिन्धी साहित्य को समृद्ध किया। श्री लालचन्द की रचनाओं के अध्ययन से उनमें साहित्य सृजन का सामर्थ्य और साहित्य को परखने की दृष्टि उत्पन्न हुई।

श्री लालचन्द का जन्म १८८५ में हुआ था और उनका देहान्त वर्ष १९५४ में हुआ। भारत के इतिहास में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समय रहा है। इस समय में पश्चिमी सभ्यता की होड़ तथा प्रभाव के कारण भारत में जो राष्ट्रीय जाग्रति उत्पन्न हुई, उसने सन् १९४७ ई. में देश को विदेशियों की दासता से मुक्त कराया। पर, इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए हमें जो मूल्य चुकाना पड़ा, वह था इस देश का विभाजन। अखण्ड

हिन्दुस्तान खण्ड-खण्ड हो गया। एक नया देश अस्तित्व में आया, जो है पाकिस्तान। फिर, उसका भी पूर्वी भाग सन् १९७१ ई. में अलग हो गया और बंगला देश के नाम से अस्तित्व में आया। हर सजग लेखक की भांति लालचन्द जी भी अपने समय के प्रभावों से मुक्त नहीं थे। इसी कारण उनका जीवन-चरित्र और रचनाओं का वर्णन करने से पूर्व, यहाँ संक्षिप्त रूप में उस समय के सिन्ध की स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

राजनीतिक स्थिति

हिन्दुस्तान के अन्य प्रदेशों की भांति, सिन्ध प्रदेश भी जब १८४३ ई. में अंग्रेज़ों के अधिकार में आया, तब वहाँ के जीवन पर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ने लगा। सन् १८५७ ई. में स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दुस्तानियों को अपनी ही निर्बलताओं के कारण असफलता का मुंह देखना पड़ा। पर इसका एक विशेष प्रभाव यह हुआ कि सन् १८५८ ई. में ही महारानी विक्टोरिया ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से इस देश की बागडोर अपने हाथ में ले ली। इस प्रकार हिन्दुस्तान का शासन एक व्यापारिक प्रतिष्ठान के हाथों से निकलकर अंग्रेज़ी मुकुट के साये में आ गया। हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों की भांति सिन्ध ने भी देश की स्वतन्त्रता के लिए आरम्भ किए गए आंदोलन में तत्परता से भाग लेना आरम्भ कर दिया। कुछ वर्षों बाद अंग्रेजी जानने वाले विद्वानों की एक संस्था 'सिन्ध सभा' नाम से कराची में स्थापित हुई, जो सामाजिक तथा शैक्षिक सुधारों के साथ-साथ साधारण जनता की आवाज़ सरकार तक पहुँचाने का भी एक सशक्त माध्यम बनी। कुछ समय बीतने पर, इस सभा में फूट पड़नी आरम्भ हुई, क्योंकि उस सभा के एक सदस्य श्री हसन अली आफिंदी ने सभा की सदस्यता छोड़कर १६ मार्च १८८४ में "सिन्ध मुहम्मदन एसोसिएशन" नाम से एक अलग संस्था कराची में स्थापित कर ली। इसका मुख्य उद्देश्य था सिन्धी मुसलमानों में नवयुग की अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करना और उनके अधिकारों के लिए सरकार तक उनकी आवाज़ को पहुंचाना। वर्ष १८८५ में 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई, जिसने भी कानून के आधार पर अंग्रेजी शासन से अपने अधिकारों की मांग करने के लिए साधारण जनता में जाग्रति उत्पन्न की।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आंदोलन ने ज़ोर पकड़ना शुरू किया। १९०५ ई. में बंगाल के बटवारे से देश में उत्पन्न हुई

राष्ट्रीय चेतना के कारण विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार, १९१६ में लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनी बीसेन्ट द्वारा आरम्भ किया हुआ 'होमरुल आंदोलन', १९१९ में 'रोल्ट एक्ट' के विरोध में देश भर में फैली अप्रसन्नता और जलियाँवाला बाग़ में निर्दोष हिन्दुस्तानियों के नरसंहार के कारण सरकार के प्रति उत्पन्न असन्तोष की लहर, १९२० में महात्मा गांधी के पथप्रदर्शन में आरम्भ प्रतिनिधित्व की मांग तथा असहयोग आंदोलन, १९३० में सविनय अवज्ञा आंदोलन, १९४२ में 'भारत छोड़ो (Quit India) आंदोलन', ये सब भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए की गई दौड़ धूप की ऐसी कड़ियाँ हैं, जिनमें सिन्धवासियों ने भी अपना पूर्ण योगदान किया।

स्वतन्त्रता के लिए की जा रही इस दौड़धूप का एक दूसरा पक्ष और भी है। १८५७ में स्वतन्त्रता के लिए हुए युद्ध के पश्चात् ही अंग्रेज़ सरकार ने यह भली भांति अनुभव कर लिया, कि इस देश में हिन्दू और मुसलमानों की एकता उसके शासन के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी सिद्ध होगी। अतः उसने हिन्दुस्तान की इस धरती में फूट के बीज छिड़कना आरम्भ कर दिया, जिसके अंकुर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पर्याप्त उभर कर सामने आ गए। वर्ष १९०६ में ढाका में 'आल इण्डिया मुस्लिम लीग' पार्टी की स्थापना हुई, जिसका प्रथम अधिवेशन २९-३० दिसम्बर १९०७ को कराची में हुआ। इसी पार्टी ने आगे चलकर हिन्दुस्तान के मुसलमानों के लिए अलग देश की मांग की। इसका परिणाम यह निकला कि शताब्दियों से आपस में साथ-साथ रहने वाले लोगों में फूट उत्पन्न हो गई। सन् १९४७ में देश का बँटवारा हुआ और पाकिस्तान अस्तित्व में आया। सिन्ध प्रदेश पाकिस्तान का अंग बना। सिन्धी हिन्दू लाखों की संख्या में अपने पुरखों की जन्मभूमि को छोड़कर भारत के विभिन्न भागों में फैल गए।

सामाजिक व धार्मिक स्थिति

गत शताब्दी के उतरार्ध में सिन्धी हिन्दुओं में बहुत से विकार उत्पन्न हो गए थे। उनमें विशेष थे– बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, सुरापान, भ्रम-अन्धविश्वास, पर्दा-प्रथा और स्त्रियों की अशिक्षा। साधु हीरानन्द, श्री कौड़ोमल चन्दनमल खिलनाणी, राजऋषि दयाराम गिदूमल शहाणी जैसे महापुरुष उस समय सिन्ध में उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी वय का अधिकांश भाग हिन्दू समाज-सुधार में व्यय किया। स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिए उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके अतिरिक्त उन्होंने विधवाओं के लिए नारीशालाएँ

भी खोलीं, जहां विधवाएँ छोटी बालिकाओं को गुरुमुखी भाषा का ज्ञान कराती थीं, और उन्हें सीना-पिरोना भी सिखाती थीं। इन्हीं महापुरुषों के प्रयासों से सिन्धी हिन्दू लड़कियों ने गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कालेज में शिक्षा ग्रहण करना भी आरम्भ कर दिया था। बीसवीं शताब्दी में सिन्ध की सामाजिक स्थिति में भी पर्याप्त सुधार हुआ, और शिक्षा के क्षेत्र में सिन्धी हिन्दू लड़कों और लड़कियों ने पहले से अधिक प्रगति कर ली।

सिन्ध की धरती शताब्दियों से ही सूफ़ी सन्तों की धरती रही है। इसलिए वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक कट्टरता प्रायः कम थी। अन्य धर्मों के सिद्धान्तों को समझने का उनमें बहुत उत्साह था। इस कारण सिन्धियों का दृष्टिकोण विस्तृत तथा सहनशील रहा है। कितने ही सिन्धी हिन्दू, मुसलमान पीरों और दरवेशों (सन्तों) के अब भी अनुयायी हैं। गत शताब्दी में ही सिन्ध में वैदिक हिन्दू धर्म के साथ-साथ नानक पंथ का भी बहुत प्रचार हुआ। ब्रह्म समाज और आर्य समाज का प्रसार भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, सिन्ध के हिन्दुओं में आरम्भ हो गया। धार्मिक दृष्टि से सिन्धी हिन्दुओं में विशालता और अन्य धर्मों एवं पंथों के लिए सहनशीलता के गुण भी दूसरों की तुलना में अधिक हैं।

शैक्षिक एवं साहित्यिक स्थिति

गत शताब्दी में अंग्रेजी सरकार ने सिन्ध में अपना शासन स्थापित करने के बाद न केवल प्रदेश की व्यवस्था और सामाजिक स्थितियों में सुधार किया बल्कि शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य किया। जब अंग्रेजों ने सिन्ध पर अधिकार किया, तब वहां पर फारसी शिक्षा का अधिक प्रभाव था। यह भाषा मुस्लिम शासकों के व्यवसाय की भाषा थी। इसलिए मुसलमान और हिन्दू, फारसी भाषा पढ़कर उसमें दक्षता प्राप्त करने में गर्व का अनुभव करते थे। गाँव-गाँव में मुल्ला-मौलवियों के मकतब (पाठशालाएं) थे, जहाँ फारसी भाषा पढ़ाने की व्यवस्था थी। मुसलमान बालक इसके साथ अपना धार्मिक ज्ञान भी प्राप्त करते थे। अपनी मातृभाषा सिन्धी का अभ्यास साधारणतया बालक घर पर ही करते थे। ऐसी परिस्थितियों में सिन्धी साहित्य भी अधिकांशतः लोक-साहित्य के रूप में मौखिक परम्परा के माध्यम से ही सुरक्षित था। इसके अतिरिक्त सूफ़ी सन्तों का कलाम (वाणी) और धार्मिक साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रहता आया था।

अंग्रेज़ों ने जब सिन्ध विजय किया, तब सिन्धी भाषा लिखने के लिए कोई एक लिपि नहीं थी। उसके लिए अरबी, फ़ारसी, देवनागरी, गुरुमुखी और हिन्दू-सिन्धी (दुकानदारों द्वारा प्रयुक्त लिपि) अक्षरों का उपयोग किया जाता था। अधिकांश सिन्धी साहित्य जो प्रकाश में आया है, वह अरबी-फ़ारसी अक्षरों में लिखा हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि सिन्ध में मुसलमानों का आधिक्य था। वे इन्हीं अक्षरों में सिन्धी लिखते थे। दूसरी ओर हिन्दुओं द्वारा सृजित साहित्य जो कुछ भी था, उसका अधिकांश भाग या तो नष्ट हो गया है या इस समय तक प्रकाश में नहीं आया है।

सिन्ध में अंग्रेज सरकार ने अपना शासन स्थापित किया तो कुछ वर्षों में ही उसने फ़ारसी के स्थान पर सिन्धी भाषा को राजकीय पत्रव्यवहार के लिए प्रोत्साहित किया। इसमें सन्देह नहीं है कि अंग्रेजी शासन के दौर में राज्य-भाषा अंग्रेज़ी बनी। परन्तु निचले स्तर पर प्रत्येक प्रान्त में अंग्रेज़ों ने स्थानीय भाषा को राजकीय पत्रव्यवहार के लिए स्वीकार किया। सरकार ने अपने अधिकारियों के लिए भी अनिवार्य कर दिया कि जिस क्षेत्र में वे पदस्थापित किए जाएँ, वहाँ की भाषा अविलम्ब सीखकर दक्षता प्राप्त करलें, जिससे कि वहाँ की साधारण जनता के दुख-दर्द और असुविधाओं को भली भांति समझ सकें। सिन्ध में पदस्थापित विदेशी अधिकारियों के लिए भी यह नियम लागू था। पर सिन्धी भाषा सीखने में कठिनाई यह थी कि उसके लिए एक लिपि व्यवहार में नहीं थी। अरबी-फ़ारसी अक्षरों में सिन्धी लिखने के लिए भी कोई एक निश्चित शैली नहीं थी। हर लिखने वाला या लेखक अपनी इच्छानुसार सिन्धी स्वर भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखता रहता था। ऐसी परिस्थितियों में सिन्धी शिक्षा तथा साहित्य की प्रगति होना कठिन था। इसलिए, उस समय के कमिश्नर सर बार्टल फ़्रेयर ने स्थानीय तथा परदेशी विद्वानों की राय को ध्यान में रखकर, और सिन्ध में मुसलमानों का बाहुल्य देखकर, सिन्धी भाषा के लिए अरबी-फ़ारसी अक्षरों का उपयोग करने का निर्णय किया। वर्ष १८५३ में उसने सिन्धी विद्वानों की एक समिति गठित की जिसने अरबी-फ़ारसी अक्षरों में सिन्धी भाषा लिखने की एक निश्चित शैली स्थापित की। फिर, शिक्षा विभाग की ओर से राज-कार्य, शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में इसी शैली के प्रचलन को प्रोत्साहित किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि उसके पश्चात भी अन्य लिपियों में सिन्धी भाषा लिखने का प्रचलन किसी सीमित क्षेत्र में चलता ही रहा।

सरकारी शिक्षा विभाग ने वर्ष १८५३ से एक ओर तो भिन्न-भिन्न विषयों पर

पाठ्य पुस्तकें तैयार करवाकर प्रकाशित करनी आरम्भ कर दीं, तो दूसरी ओर मौखिक परम्परा के माध्यम से सुरक्षित रखे हुए सिन्धी लोक साहित्य की पूंजी को भी एकत्रित कर प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। सिन्धी के जानकार परदेशी विद्वानों ने सिन्धी शब्दकोष और व्याकरण तैयार कर प्रकाशित करवाए तो फिर देशी विद्वानों नें भी इस दिशा में अपने कदम बढ़ाए। मास्टर हरिसिंह (१८८५ से) और श्री पोकरदास (१८८६ से) गत शताब्दी के निजी प्रकाशनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिन्होंने कई सिन्धी पुस्तकों का प्रकाशन कर अपनी मातृभाषा के साहित्य को समृद्ध किया। सिन्धी शेर (कविता) की परम्परा तो कई शताब्दियाँ पुरानी है। पर, सिन्धी गद्य की उन्नति, अंग्रेजों का शासन स्थापित होने के पश्चात ही हुई। इसके मुख्य कारण थे – सिन्धी भाषा में नियमित शिक्षा देने के लिए विद्यालयों की स्थापना करना, सिन्धी लिपि को निश्चित रूप प्रदान करना, सिन्धी गद्य में पर्याप्त साहित्य प्रकाशित कर उपलब्ध करवाना, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के कारण युरोपीय साहित्य की परम्पराओं का ज्ञान होना, सिन्ध में मुद्रणालयों का आरम्भ और आवागमन की सुविधाएँ उपलब्ध कराना, सिन्ध में समाचार पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं का आरम्भ होना, भारत के अन्य प्रान्तों (विशेषतः महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, बंगाल और उत्तर प्रदेश) के साहित्य का अध्ययन करना और उनकी सामाजिक जाग्रति और साहित्यिक प्रगति का सिन्ध पर प्रभाव पड़ना। इसलिए अंग्रेजी शासन के दौर में सिन्धी शेर (कविता) की तुलना में सिन्धी गद्य आगे निकल गया।

गत शताब्दी के उत्तरार्ध में यद्यपि शिक्षा और राज-काज के क्षेत्र में फारसी का प्रभाव कम हुआ, पर उस समय के सिन्धी शेर (कविता) पर उसका प्रभाव और अधिक बढ़ गया। विषय और नज़्म के भिन्न-भिन्न रूपों की दृष्टि से बहुत से सिन्धी शायर (कवि) फारसी शायरी की अंधाधुंध नकल करने लगे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से देश में राष्ट्रीय जाग्रति आने के कारण सिन्धी शेर का विषय बदला और वह जीवन के अधिक निकट आया, तब भी फारसी नज़्म के सांचे को अपनाने का मोह बहुत से शायर नहीं त्याग सके। इक्का-दुक्का सिन्धी शायर थे जिन्होंने दोहों, सोरठों और बैतों इत्यादि की पुरानी परम्परा को भी स्थापित रखा और शेरों की रचना के नए-नए प्रकारों का आविष्कार किया। दूसरी तरफ गद्य की परम्परा का अध्ययन करें तो गत शताब्दी में भी अनुवाद की परम्परा स्थापित रही, पर उसके साथ-साथ कितनी ही मौलिक रचनाएँ

भी गद्य की भिन्न-भिन्न शाखाओं में प्रकट हुई। नज़्म (काव्य) की तुलना में, गद्य में जीवन की वास्तविकताओं का रूप अधिक स्पष्ट रूप से झलकने लगा। भाषा और अनुलेख की दृष्टि से इस शती में गद्य ने बहुत उन्नति की।

श्री लालचन्द जगत्याणी ने, न केवल शताब्दियों से उत्तराधिकार में मिले सिन्धी साहित्य की परम्पराओं का पूरा-पूरा लाभ उठाया, वरन् उन्होंने भारत और यूरोप की भिन्न-भिन्न भाषाओं की सर्वोत्तम साहित्यिक रचनाओं का भी गहन अध्ययन किया और उनसे प्रभावित हुए। बीसवीं शताब्दी में हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक जाग्रति के प्रभावाधीन वे पलकर बड़े हुए। देश की परिस्थितियों और जीवन की वास्तविकताओं से वे लगातार जुड़े रहे। इनका प्रभाव उनकी रचनाओं पर स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। इसका वर्णन आगे चलकर भिन्न-भिन्न अध्यायों में किया जाएगा।

अध्याय द्वितीय

जीवन तथा व्यक्तित्व

श्री लालचन्द का जन्म २५ जनवरी १८८५ ई. को हैदराबाद सिन्ध में हुआ। यह वह वर्ष है, जिसमें 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' का भी जन्म हुआ, जिसने आगे चलकर हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए आरम्भ किए गए आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। देश के बटवारे के पश्चात श्री लालचन्द अपनी जन्मभूमि छोड़कर, बम्बई में स्थापित हुए, जहाँ १८ अप्रेल १९५४ ई. को उनका स्वर्गवास हुआ। श्री लालचन्द के दादा मुंशी सुखरामदास जगत्याणी अंग्रेजी शासन में हैदराबाद में तहसीलदार थे। उनका झुकाव धर्म की तरफ अधिक था। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी वह समय निकालकर विभिन्न धर्मों और पंथों के ग्रंथों का अध्ययन करते रहते थे। उन्होंने गुरु ग्रंथ साहब और अन्य धार्मिक ग्रंथों से सन्तों के श्लोक चुनकर, अरबी-सिन्धी अक्षरों में लिखकर एक संग्रह तैयार किया था, जो आज भी उनकी सन्तान के पास हस्ताक्षरों के रूप में सुरक्षित है। उस संग्रह से उनके गहन अध्ययन और धार्मिक वृत्ति का साक्ष्य भली भांति मिलता है। श्री लालचन्द के पिता श्री अमरडिनोमल जगत्याणी भी राज्य सेवा में मुख़्तार (कलक्ट्री में छोटा वकील) के पद पर थे। उन्होंने पर्याप्त समय थरपारकर ज़िले के खुपरा ग्राम में व्यतीत किया।

बचपन तथा प्रारम्भिक शिक्षा

श्री लालचन्द का बचपन कैसे बीता, इसकी अधिक जानकारी नहीं मिल पाती, यदि वे स्वयं अपने लेखों में इसका वर्णन नहीं करते। उन्होंने अपने बचपन के जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत किए हैं, जिन से उनके बचपन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

'बाल कक्षा में प्रथम दिन' नामक संस्मरण में उन्होंने अपने स्कूल जाने के प्रथम दिन का आनन्ददायक चित्र प्रस्तुत किया है— लाला अभी चार वर्ष का ही था कि एक दिन अपने चचेरे भाई ठाकू को स्कूल जाते हुए देखा। इस पर उसने भी ज़िद पकड़ ली कि मैं भी स्कूल जाऊँ। उसका भाई ठाकू देर हो जाने के भय से उसे ले जाने से इनकार करके चला गया। इस पर लाले ने रो रोकर घर सिर पर उठा लिया। ठाकू के पिता श्री टहिलराम का उन दिनों हैदराबाद में, श्री तोलाराम वकील के बंगले

के सामने स्कूल हुआ करता था। ठाकू उसी स्कूल में पढ़ता था। संयोग से उस समय टहिलराम जी के स्कूल का चपरासी अलमारी की चाबियाँ लेने के लिए घर पर आया। लाले की दादी ने लाले को भी उसके साथ स्कूल भेज दिया। लाला बड़ी प्रसन्नता से अपने चाचा के स्कूल पहुँचा। चाचा टहिलराम ने प्यार से उसे कक्षा में पहली बेंच पर बैठा दिया। चाचा टहिलराम जी और विद्यार्थी अपने काम में व्यस्त, उधर निठल्ला लाला अपनी शरारतें करने में व्यस्त ! यह देखकर आखिर चाचा ने उसे चपरासी के साथ श्री ताराचन्द अध्यापक की कक्षा में भेज दिया। पर वहाँ का दृश्य देखकर तो बालक के छक्के ही छूट गए। छोटे-छोटे बालक धरती पर बैठे थे। हाथों में पट्टियाँ (स्लेटें) थीं और सिर हिलाते जा रहे थे। अध्यापक का गद्देला उत्तर वाली दीवार के पास पड़ा था। कक्षा के बीचोबीच एक खम्भा था जिसके साथ चिपका एक बालक कसकर बंधा हुआ था। अध्यापक ताराचन्दजी लगातार उसके पुट्ठों पर पट्टी से पीट रहे थे।

यह सब देखकर तो लाले का हृदय काँप उठा। ऊपर से जो अध्यापक ताराचन्दजी निकले तोतले, सो लाले की तो रही सही हिम्मत भी टूट गई और फिर ऊपर से छूटी बारह बजे की तोप ! सब लड़कों की शायद ऐसी आदत थी, सो सब हाथ ऊँचें करके एक साथ चिल्लाए "तोप" !

लाले की बुद्धि तो पहले ही उत्तर दे गई थी सो उसने समझा—हो न हो सभी बालक अध्यापक के संकेत पर मिलकर उसे पीटने वाले हैं !

बस लाले का तो रहा-सहा साहस भी उड़न छू हो गया। और वह लगा ज़ोर-ज़ोर से रोने, रोना बन्द ही न हो ! उधर तोतले अध्यापकजी, बच्चे को पुचकारते, सांत्वना देते, सो तो किया नहीं, उलटा क्या किया कि अन्य सब लड़कों को छुट्टी देकर लाले को रोता हुआ कक्षा में ही छोड़कर बाहर से कुंडी लगाकर चले गए।

कमरे में बन्द अकेला बालक रोता रहा। ईश्वर का धन्यवाद कि कुछ देर बाद श्री टहिलराम उधर से निकले। स्कूल बन्दकर वे भी घर जा रहे थे। कमरे के अन्दर से किसी बच्चे की रोने की आवाज़ सुनकर वे रुक गए। दरवाज़ा खोला तो अपने भतीजे को रोता हुआ पाया। चपरासी से उसे गोद में उठवाकर घर ले आए।

इस घटना का बालक के कोमल मन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ा होगा, इसका अनुमान सरलता से ही लगाया जा सकता है। लाले ने स्कूल जने से सर्वथा "ना" पकड़ ली। माता-पिता बहुत लालच देते थे कि वह स्कूल जाए, पर लाला स्कूल के नाम से कोसों दूर भागता था। इस घटना के पश्चात पूरे दो वर्ष उसने किसी स्कूल

के दर्शन नहीं किए। ऐसी स्थिति में उसके दादा ने अपने पास रखकर ही लिखना-पढ़ना सिखाया। लालचन्द जी लिखते हैं –

"सिन्धी अक्षर मुझे बड़े बाबा ने सिखाए।

बड़े बाबा तो हैदराबाद में तहसीलदार थे। वे अधिकतर दौरे पर रहते थे। मुझ से अत्याधिक स्नेह था, सो दौरे पर भी वे मुझे अपने साथ ले जाते थे।

खुद कहीं पर ठहरते और लिखने के काम में व्यस्त हो जाते तो मैं भी लाल स्याही की दवात और कलम लेकर बैठा उलटे-सीधे अक्षर लिखता रहता था।

मेरा यह चाव देखकर, बाबा ने मुझे पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

मुझे याद नहीं कि बाबा ने मुझे सिखाने की कौन सी विधि अपनायी, पर इतना अवश्य याद है कि पिताजी के जो पत्रादि आया करते थे, वे सब मैं पाँच वर्ष की आयु में बेहिचक पढ़ जाता था।

सिन्धी में भी मैं उसी कारण से दक्ष हुआ हूँ। "[२]

इस प्रकार लाले की शिक्षा का आरम्भ उसके दादा की देखरेख में हुआ। प्रथम व द्वितीय कक्षा का ज्ञान किसी स्कूल में नहीं वरन् दादा से प्राप्त किया। लाला अनुमानतः सात वर्ष का था कि उसके दादा का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद दादी ने उसे स्कूल भेजने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

उन दिनों साधु हीरानन्द आडवाणी (१८६३-१८९३) ने अपने ज्येष्ठ भ्राता साधु नवलराय और अन्य कुछ मित्रों के सहयोग से आठ अक्टूबर १८८८ को हैदराबाद में यूनियन अकाडेमी आरम्भ की थी। कुछ ही वर्षों में इस स्कूल का नाम पूरे सिन्ध प्रान्त में प्रसिद्ध हो गया। लाले की दादी की मंशा उसे इस स्कूल में प्रवेश दिलाने की थी। पर उसे सीधे ही तीसरी कक्षा में तो प्रवेश मिल नहीं सकता था। लाले के चाचा श्री टहिलराम जगत्याणी का प्राथमिक विद्यालय हैदराबाद में अब भी चल रहा था। उन्होंने कहा कि कुछ दिनों के लिए लाला चलकर हमारे विद्यालय में प्रवेश ले तो फिर मैं प्रमाण पत्र बनाकर दे दूँगा। इस पर लाला थैली में पुस्तक डालकर, चाचा टहिलराम जी के साथ विद्यालय जाने लगा। यह वही विद्यालय था जहाँ से ढाई वर्ष पूर्व लाला बाल कक्षा से भयभीत होकर निकला था। इस बार भी दुर्भाग्य ही कहिए कि प्रथम दिन ही विद्यालय में ऐसी घटना घटी कि फिर तो उसे इस विद्यालय के नाम से ही चिढ़ हो गई। "चोरी का कलंक" नामक अपने एक संस्करण में लालचन्दजी ने उस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है–

"उन दिनों होती थी थैलियाँ, बस्तों का प्रचलन तो बाद में हुआ। मैं थैली में पुस्तक डालकर, चाचा टहिलरामजी के साथ स्कूल गया।

सारा दिन तो सुख से बीता। अन्त में सब बालकों को एक पंक्ति में खड़ाकर पहाड़े बुलवाए जा रहे थे, दो एकम दो, दो दूनी चार......दस तक के पहाड़े अध्यापक श्री टोपणदास के पीछे-पीछे बोलते रहे।

इतने में ही एक बालक चिल्लाया कि श्रीमान मेरी भूगोल की पुस्तक नहीं है।

अध्यापकजी ने कहा – जिस किसी ने भी इसकी भूगोल की पुस्तक ली हो, इसे वापस कर दे।

पर कोई, कुछ नहीं बोला।

अध्यापकजी ने कहा – हर एक बालक अपनी-अपनी थैली में देखे।

अन्य सभी बालकों ने अपनी-अपनी थैली में पुस्तकें उथल-पुथल कर देख लीं। मैं शान्त खड़ा रहा।

मुझे विश्वास था कि भूगोल की पुस्तक मैंने ली ही नहीं, तो फिर थैली में देखूं ही क्यों ? अध्यापक जी ने मुझसे पूछा, तो मैंने उनसे भी यही कहा।

अध्यापकजी को सन्देह हो गया, उन्होंने मेरी थैली खोली, तो भूगोल की पुस्तक मेरी थैली में मिल गई !

फिर तो मुझसे कुछ पूछा ही नहीं, उनके विचार से चोर रंगे हाथों पकड़ा गया है, सो भड़ककर आठ-दस थप्पड़ जमा दिए।

मेरे गाल लाल हो गए। मैं चकित था कि यह पुस्तक मेरी थैली में आई कैसे ?

वर्षों बाद एक पुराने सहपाठी ने स्वीकारा कि वह भूगोल की पुस्तक हंसी के विचार से उसने मेरी थैली में डाल दी थी !

अस्तु, मुझ पर तो चोरी का कलंक लग गया !

ऐसा नहीं कि मैंने बचपन में चोरी की ही नहीं, पर यह जो झूठा कलंक मुझ पर लगा उसने मेरे मन में स्कूलों के प्रति एक बुरा प्रभाव उत्पन्न कर दिया।

चाचा टहिलरामजी ने तो प्रमाण-पत्र बना दिया, पर उसके पश्चात भी मैं छः माह तक घर वालों को तड़पाता रहा। कहता-स्कूल जिसका नाम, मैं पढ़ने न जाऊँ वहां !"[२]

कहते हैं "अन्न का मुँह चक्की की ओर" सो छः आठ माह पश्चात अन्ततः श्री लालचन्द ने स्कूल में प्रवेश लिया और नियमित शिक्षा ग्रहण करनी आरम्भ की। प्राथमिक

शिक्षा का एक दो वर्ष हैदराबाद के क्रिश्चन मिशन स्कूल में पढ़े। सिन्धी की छठी कक्षा (अंग्रेजी की द्वितीय कक्षा)* खुपरा जाकर पढ़े, जहाँ उनके पिता सरकारी नौकरी में थे। उसके बाद हैदराबाद में साधू हीरानन्द द्वारा स्थापित 'यूनियन अकाडेमी' स्कूल में शिक्षा पाई। सन् १८९३ में साधू हीरानन्द और साधू नवलराय के देहान्त के पश्चात उस स्कूल का नाम 'नवलराय हीरानन्द अकाडेमी' कर दिया गया। यह एक आदर्श विद्यालय था, जहाँ विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। वहाँ अंग्रेजी और अन्य विषयों के साथ-साथ धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। विद्यालय के संस्थापक साधू हीरानन्द का दृढ़ विचार था कि सिन्ध में संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रचार से नई पीढ़ी के बालक अपने पुरखों की पैतृक संपति से अवगत होंगे। उनमें अपनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा। इसलिए उन्होंने कलकत्ते से अपने मित्र पण्डित भवानीप्रसाद बैनर्जी को बुलवाया कि वह अकाडेमी में संस्कृत विषय पढ़ाएँ। श्री लालचन्द उन विद्यार्थियों में से एक थे जिन्होंने इस विद्यालय में संस्कृत का अध्ययन किया। उन दिनों के एक रोचक संस्मरण का वर्णन उन्होंने "टुबटू, टुबटू, टुबटू" नामक रेखाचित्र में किया है।

लालचन्दजी बात किया करते थे – "स्कूल, मैं सदा अपना गृहकार्य करके ही जाया करता था, पर मेरा कार्य करने का ढंग कुछ निराला होता था। घर में बैठकर पुस्तक खोलकर पढ़ना और कार्य करना मुझसे नहीं होता था, दोपहर को जब स्कूल जाने का समय होता था, तब एक घंटा पहले घर से निकलता था और तिलक चढ़ाई पर, एक तरफ बैठकर, जल्दी-जल्दी कार्य पूरा कर, फिर ठीक समय पर स्कूल पहुँच जाता था"

"कक्षा के चलते समय स्वयं पर अनुशासन रहता था। कभी भी कक्षा चलते हुए बिना कारण कोई छेड़छाड़ आरम्भ नहीं करता था, अन्यथा तो शरारतों में दक्ष था, किसी के वश का नहीं था। प्रायः सत्य की राह चलता था, चाहे सामने वाले को क्रोध आए या उसे ही सजा क्यों न भुगतनी पड़े।"[५]

घर के वातावरण के कारण लालचन्दजी का झुकाव धर्म की ओर, बचपन से ही था। स्वयं बताते थे – "छः वर्षों का था जब अत्याधिक बीमार पड़ गया। सब ने आस छोड़ दी थी। एक दिन अचानक मैं बिस्तर पर उठ बैठा। मैंने कहा मुझसे धर्म-कर्म

---

* सिन्ध में अंग्रेजी की पढ़ाई कक्षा ५ से आरम्भ की जाती थी। प्रथम चार कक्षाओं की शिक्षा मातृभाषा सिन्धी में ही होती थी।

करवा लीजिए। उठिए, गेहूँ की थाली और जो कुछ आप चाहें, मुझसे हाथ लगवालें। बस ! मेरी माँ बहुत रोने लगी। यह सब देखकर मेरी दादी उठी और थाली भरकर ले आई। मैंने थाली को हाथ लगाया। बस, मानो जादू हो गया। उसी घड़ी से मैं स्वस्थ होने लगा और जल्दी ही पूर्ण स्वस्थ हो गया। मैंने घरवालों से धर्म-कर्म करवाने के लिए इसलिए कहा, कि मुझे स्वप्न में सखी क़बूल मुहम्मद ने दर्शन देकर कहा– "लाला कुछ धर्म-कर्म करो तो पीड़ा टले।"

लालचन्दजी बचपन से ही साहसी थे, इसका ज्ञान "जिन * हैं ? "[७] नामक वास्तविक घटनाओं पर आधारित एक संस्मरण से होता है। इसमें लालचन्दजी ने अल्पायु में ही जिन-भूतों से सामना होने का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। बारह वर्ष की आयु में उन्होंने शुक्ल पक्ष की रातों में फुल्हदेल से खुपरा लौटते हुए निर्जन स्थानों पर जिन-भूतों के भयानक तमाशे देखे। ऐसे तमाशे यदि कोई बड़ा साहसी व्यक्ति भी देखे तो मारे भय के उसके प्राण निकल जाएं। परन्तु यह नन्हा बालक, गुरु-पीरों, देवी-देवताओं का स्मरण करता हुआ, भयावह राह लांघकर अपने निश्चित स्थान पर आ पहुँचा। खुपरा में घर पहुँचते ही एक अन्य भयावह दृश्य देखा। उनके घर में ही किसी बालक के शरीर में किसी प्रेतात्मा ने वास कर लिया था। बालक लालचन्द उत्सुकतावश रात भर छत में बने जंगले में से छिपकर देखते रहे कि किस प्रकार उस बालक का भूत निकाला जाता है। कुछ दिनों पश्चात वह बीमार बालक तो चल बसा, पर उन भयानक दृश्यों के देखने से बालक लालचन्द के मन पर भी कुछ दिन भय छाया रहा।

श्री लालचन्द की विद्यालयी शिक्षा का क्रम लगातार नहीं चला। उसमें कोई न कोई बाधा आती ही रही। स्कूल जाने की चाह उत्पन्न हुई तो कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि एक-दो वर्ष स्कूल के नाम से बिचक गए। अनुमानतः सात वर्ष के होंगे कि इनके दादा का स्वर्गवास हो गया। अकाडेमी में अंग्रेजी की पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे कि इनके पिता श्री अमरडिनोमल इस संसार से विदा हो गए। अन्ततः अट्ठारह वर्ष की आयु में अकाडेमी स्कूल से इन्होंने वर्ष १९०३ में बम्बई यूनिवर्सिटी की मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्यापन और आगे की शिक्षा

श्री लालचन्द ने जब मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, तब उनके चाचा

---

* जिन = भूत (मुसलमान भूत)

श्री मयाराम जगत्याणी ने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि यदि तुम बी. ए., एल.एल. बी. की तैयारी करो तो तुम्हारी सम्पूर्ण कालेज शिक्षा का उत्तरदायित्व मैं वहन करने को तैयार हूँ। पर श्री लालचन्द ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। कहा – "बी. ए. करने के लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु एल.एल.बी. कदापि नहीं करूँगा। वकालत आरम्भ कर मैं अपना जीवन नष्ट नहीं करूँगा।"

लालचन्दजी स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वे अपने विचारों पर सदा दृढ़ रहते थे। दादा के प्रभावाधीन रहकर बचपन से ही साहित्य के लिए रूचि उत्पन्न हो चुकी थी। अतः उन्होंने अपना मार्ग स्वयं ही चुन लिया। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात, चाचा से वैचारिक मतभेद उत्पन्न हो जाने से उन्हें बी. ए. की पढ़ाई के लिए भी घर से कोई विशेष आर्थिक सहयोग नहीं मिल सका। इस कारण लालचन्दजी उसी अकाडेमी स्कूल में जाकर अध्यापक हो गए जहाँ से उन्होंने स्वयं शिक्षा पाई थी। साहित्य के लिए उनके मन में अथाह प्रेम था। उन्हें जो भी समय मिलता था उसे वे अधिकाधिक ज्ञानार्जन में व्यय करते थे। इसी अध्ययन के फलस्वरूप वे सिन्धी और अन्य विषय भी अत्यन्त सुगमता तथा पूर्ण सफलतापूर्वक उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ा सकते थे। विद्यालय से उन्हें इतना मोह था कि वहाँ अध्यापन करते हुए, जो प्रथम उपन्यास उन्होंने लिखा 'चोथ जो चण्डु' (चौथ का चन्द्रमा), वह उसी विद्यालय को समर्पित किया। पुस्तक के आरम्भ में उन्होंने लिखा है – "अर्पित है, अथाह स्नेह और प्यार से, सादर करबद्ध होकर श्री नवलराय हीरानन्द अकाडेमी और उनके योग्यतम संस्थापकों तथा आरम्भिक अथक प्रयास करने वाले व्यवस्थापकों को।" उसके बाद अकाडेमी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए इन्होंने एक 'शेर' भी लिखा है, जिसमें हाथ जोड़कर ईश्वर से अकाडेमी की उन्नति के लिए प्रार्थना की है।

उस समय नौकरी के साथ-साथ आगे की पढ़ाई चालू रखने की प्रथा कम थी। सिन्धी विद्यार्थी प्रायः पहले अपनी शिक्षा पूर्ण करते थे, तत्पश्चात ही जाकर कोई सरकारी नौकरी करते थे या व्यवसाय में लगते थे। किन्तु लालचन्दजी की स्थिति निराली थी। इन्होंने अध्यापन के साथ-साथ कालेज शिक्षा भी प्राप्त की। अध्यापन के समय १९०८ में इन्होंने एस. टी. सी. (सेकेण्डरी टीचर्स सर्टीफिकेट) परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

लालचन्दजी ने अकाडेमी में अध्यापन के पश्चात कुछ समय के लिए श्री प्रभदास शोकीराम आडवाणी द्वारा स्थापित नव विद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात वे कराची चले गए और सन् १९१० से १९१२ तक कराची के मदरसा-ए-इस्लाम में

अध्यापन का कार्य किया। सिन्ध के मुसलमानों में धर्मिक शिक्षा के साथ-साथ नवयुग की अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का यह मुख्य केन्द्र था। इस स्कूल की स्थापना सन् १८८५ में सिन्धी मुसलमानों के पथप्रदर्शक श्री हसन अली आफिंदी द्वारा की गई थी, जिन्होंने इससे एक वर्ष पूर्व 'सिन्ध मुहम्मदन ऐसोसिएशन' भी स्थापित की थी। ऐसे वातावरण में रहते हुए लालचन्दजी ने इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का भी गहन अध्ययन किया और वर्ष १९११ ई. में 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' नाम से इस्लाम के पैगम्बर हज़रत मुहम्मद के जीवन का वृतान्त लिखकर प्रकाशित किया। उन्हीं वर्षों में श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी भी उसी स्कूल में अध्यापक थे। मदरसा के पश्चात लालचन्दजी ने श्री ताराचन्द शहाणी द्वारा स्थापित स्कूल में अध्यापन कार्य आरम्भ किया। उस स्कूल में अध्यापन कार्य करते हुए उन्होंने श्री डयाराम जेठमल सिन्ध कालेज, कराची में प्रवेश लिया। पूरे सिन्ध में यह प्रथम कालेज था, जिसकी स्थापना सन् १८८७ ई. श्री डयाराम जेठमल, राजर्षि डयाराम गिदूमल शहाणी और अन्य कुछ सिन्धियों के सहयोग से हुई थी। वहाँ भी श्री लालचन्द का अध्ययन बिना किसी बाधा के लगातार चल नहीं सका। उन्होंने सन् १९१८ ई. में दर्शन में बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। लालचन्दजी का शिष्टाचार सम्बन्धी साहस इससे प्रकट है कि उन्हीं के कुछ विद्यार्थी जो उनके पास स्कूल में पढ़ चुके थे, वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर उन्ही दिनों उस कालेज में प्रोफ़ेसर बन गए थे। लालचन्दजी उन्हीं के विद्यार्थी होकर कक्षा में बैठते थे। स्वयं बताते थे, "कुछ प्रोफ़ेसर मुझसे झिझकते थे। एक प्रोफ़ेसर की कक्षा में मैं हाथ उठाकर कुछ पूछना चाहता, तो वह बीच में ही रोक देता। कहता-आप शान्त रहें। आप प्रश्न न पूछें। एक दिन मैंने बाहर आकर उससे पूछा कि आप ऐसा क्यों करते हैं ? तो उत्तर दिया कि आप से डर लगता है कि कक्षा चलते आप मुझे कहीं अटका न दें। आप हाथ उठाते हैं तो मेरा साहस टूट जाता है। इसलिए कृपाकर आप कक्षा में प्रश्न न पूछा करें। आखिर तो मैं आपका विद्यार्थी हूँ।"

श्री लालचन्द ने अपनी आयु का एक चौथाई भाग शिक्षा के क्षेत्र में व्यतीत किया और उस दिशा में पर्याप्त सुधार भी किए। इसका वर्णन 'तालीमी क्षेत्र में सुधार' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। अध्यापन का कार्य करते हुए उन्हें बहुत से विचित्र अनुभव भी हुए। उनमें से कुछ संस्मरणों का वर्णन उन्होंने बहुत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। जिन से उस समय की शैक्षिक स्थिति पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। एक संस्मरण श्री लालचन्द के ही शब्दों में यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका

शीर्षक है "हैहिड़ो बि को नींगरु"[१] (ऐसा भी कोई बालक)

"मैं मदरसे में बैठा सिन्धी द्वितीय कक्षा के बालकों की परीक्षा ले रहा था। बाकी सब बालक तो स्वयं उत्तीर्ण हो गए। अंतिम बालक को भी मैंने एक सरल सा पाठ पढ़ने को दिया। उसने पढ़ा, पर कुछ अटक रहा था। मैंने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा – बाकी यह अंश पढ़ो तो तुम्हें भी उत्तीर्ण कर दूँ।"

परन्तु, मेरा इतना कहना था कि बालक आउ-बाउ बोलने लगा। शब्दों के उच्चारण सर्वथा मनघड़ंत कर रहा था। मक्खी को मकोड़ा पढ़ रहा था। ऊंट को कह रहा था उथ। शब्द हो ढोर तो कह रहा था डोड़ो।

मैंने उसे डांटा नहीं, बल्कि स्नेहपूर्वक पूछा–क्यों बेटे ? ऐसा अच्छा तो पढ़ रहे थे, अब क्या हुआ ?

कहने लगा–श्रीमान, आपने डराया नहीं, कि तुम्हें उत्तीर्ण करता हूँ ?

"तो उत्तीर्ण होना तो अच्छी बात है न ?"

"वाह, श्रीमान वाह !"

"क्यों ?"

सुनिए श्रीमान ! इस दूसरी कक्षा में आए, आज मुझे पूरे ग्यारह वर्ष हुए हैं। अध्यापक जी से मेरी घनिष्ठता हो गई है। अब यदि मैं इस कक्षा के बाद तीसरी कक्षा में जाऊँ, तो इसका अर्थ होगा कि मैं नए अध्यापकजी से नए सिरे से मित्रता करूँ ! यह अपने से नहीं होगा। मैं तो श्रीमान, यहीं ठीक बैठा हूँ। शान्ति से दो वर्ष और निकल जाएं और मैं इक्कीस का हो जाऊं तो इस कैद से छूटकर माँ-बाप के पास चला जाऊँ।

किसी समय बालक के पिता मदरसे में आए। मैंने उन्हें कहा-बेटे को कुछ समझाते नहीं, कि कुछ पढ़-लिख ले ? तो मुझसे कहने लगे-श्रीमान्, आपको लगी है पढ़ाई की। हम कहते हैं, हमारा कलेजे का टुकड़ा आकर हमसे मिले ! सरकार ने तो बलपूर्वक हमारे कलेजे के टुकड़ों को हमसे जुदा कर दिया है। मैं इस आयु का था तो मैंने कई रंग कर डाले थे। इस मेरे लाडले ने देखा ही क्या है, किया ही क्या है ?

बात यह थी-वह था टालपुर। उस समय में टालपुरों के बच्चों को सरकार बलपूर्वक पढ़ाती थी। उनकी शिक्षा और निवास के लिए मदरसे में विशेष व्यवस्था होती थी। सारा व्यय भी सरकार वहन करती थी। तो भी कतिपय टालपुर माता-पिता हिचकते थे। यह पिता भी उन्हीं में से एक थे।

मैंने मन ही मन कहा–जैसे काग, वैसे बच्चे !

गृहस्थ जीवन

श्री लालचन्द की अल्पायु में ही उनके सिर से माता-पिता का साया उठ गया था। जिन दादाजी ने स्नेहपूर्वक उन्हें अपने साथ घुमाते-फिराते, सिन्धी लिखना-पढ़ना सिखाया था, वे भी लालचन्दजी को सात वर्ष की आयु में छोड़कर परलोक सिधार गए थे। दो तीन वर्षों बाद उनकी माता का भी स्वर्गवास हो गया। वे अभी अंग्रेजी की कक्षा पांच में अकेडमी स्कूल में पढ़ते थे कि उनके पिता श्री अमरडिनोमल भी इस नश्वर संसार से प्रस्थान कर गए। इस प्रकार लालचन्दजी ने अपने चाचा की निगरानी में मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की।

लालचन्दजी अपने चाचा की इच्छा विरुद्ध, बी.ए., एल.एल.बी. का अध्ययन न करके अकादेमी में अध्यापन कार्य आरम्भ करके, उनके कोप भाजन बने। अध्यापन कार्य करते हुए लालचन्दजी का विवाह हुआ। वैवाहिक जीवन के कर्तव्यों को निभाते हुए उन्होंने आगे की शिक्षा ग्रहण की। वर्ष १९१५ में उनके यहां एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होंने देवी रखा। लालचन्दजी ने बी.ए. की परीक्षा भी देवी के जन्मोपरान्त वर्ष १९१८ ई में उत्तीर्ण की। देवी से पूर्व भी लालचन्दजी के घर दो बालकों का जन्म हुआ था, पर वे अल्पायु में ही गुजर गए थे। उसी प्रकार देवी के जन्मोपरान्त भी उनके यहाँ दो बालक हुए थे, परन्तु उन्होंने भी अधिक आयु का भोग नहीं किया। इस प्रकार लालचन्दजी की सन्तानों में केवल एक पुत्री देवी ही जीवित है जो बम्बई में रहती हैं। इस इकलौती पुत्री में लालचन्दजी के प्राण थे। फिर जो, दिसम्बर १९२१ ई. में लालचन्दजी की धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया तो उनका मोह अपनी बेटी से अत्याधिक हो गया। पत्नी के देहान्त के एक माह पश्चात अर्थात जनवरी १९२२ ई. में कराची में हुए असहयोग आंदोलन में भाग लेते हुए गिरफ्तार हो गए। उन्हें एक वर्ष की जेल की सज़ा हुई। एक तो पत्नी के देहान्त, ऊपर से इकलौती बेटी के विछोह ने उनके स्वास्थ्य को झकझोड़ दिया। लालचन्दजी ने सज़ा के आरम्भिक कुछ माह बम्बई के निकट थाणा (स्थान) की जेल में बिताए। तत्पश्चात उन्हें रुग्णता के कारण शेष समय कराची जेल में बिताने के लिए भेज दिया गया। पिता का, बेटी में इतना मोह था, कि जेल अधिकारियों की अनुमति से हर सप्ताह नन्ही देवी को मुलाकात के लिए बुलवाते थे।

राजनीतिक चाहे सामाजिक जीवन में श्री लालचन्द के घनिष्ट मित्र थे श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी। दोनों एक दूसरे के निकट इस कारण भी आए थे, जो अनुमानतः

दो वर्षों तक कराची के मदरसे में साथ-साथ अध्यापन कार्य करते रहे थे।

समय बीतते, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वे साथ-साथ कार्य करते रहे। श्री जेठमल का पुत्र राम और लालचन्दजी की पुत्री देवी, दोनों श्री ताराचन्द शहाणी के न्यू हाई स्कूल कराची में सहपाठी थे। स्कूल की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात उन दोनों का विवाह हुआ तो लालचन्दजी और जेठमलजी घनिष्ठ मित्र होने के साथ-साथ समधी भी हो गए।

मज़े की बात तो यह थी कि जीवन की राह पर एक ही कार्य करते हुए भी श्री लालचन्द और श्री जेठमल में यदा-कदा कुछ बातों पर मतभेद भी उत्पन्न हो जाते थे। बस, फिर तो खुलमखुला साधारण जनता के सम्मुख मंच पर दोनों में वाक्‌युद्ध छिड़ जाता था। एक दूसरे की खूब छीछालेदर करते थे। परन्तु ज्योंही मंच से नीचे उतरे, कि फिर एक दूसरे को गले लगाकर सच्चे मित्रों सा व्यवहार करते थे।

श्री लालचन्द लड़कियों को अधिक तथा उच्च शिक्षा दिलवाने के पक्षधर थे! इसीलिए उनकी इच्छा थी कि उनकी पुत्री देवी भी किसी अच्छे वातावरण में उच्च शिक्षा ग्रहण करे। इसी कारण लालचन्दजी सन् १९३३ में देवी को शान्ति निकेतन ले गए और कालेज शिक्षा के लिए उसे वहाँ प्रवेश दिलवाया। स्वयं लौटकर ज्योंही सिन्ध पहुँचे कि लाडली बेटी के मोह में बीमार पड़ गए। परिणाम यह हुआ कि देवी अपनी शिक्षा पूर्ण किए बिना ही सिन्ध लौट आई।

आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो लालचन्दजी की आय विशेष नहीं थी, वे जीवन में आए उतार-चढ़ाव को शान्ति से सहन करते रहे, परन्तु किसी के आगे कभी हाथ नहीं फैलाया। पुस्तकों आदि के प्रकाशित होने पर जब कुछ पैसा मिलता था तो वे सैर-सफ़र के लिए निकल पड़ते थे। वे न केवल सिन्ध का कोना-कोना घूमे बल्कि हिन्दुस्तान के भी कितने ही शहर देखे। यात्रा में देवी को प्रायः वे साथ ही रखते थे। दो-तीन बार तो लालचन्दजी कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भी बेटी को अपने साथ ले गए। दूसरी तरफ, देवी का भी अपने पिता में बहुत मोह था। विवाह पश्चात भी वे अपने पिता की देखभाल करती रहती थीं। बटवारे पश्चात जब ये लोग बम्बई चले आए तो बहुत समय तक लालचन्दजी को अपने साथ ही रखा। लालचन्दजी अपनी रुग्णता के कारण जब कई माह तक बिस्तर पर रहे और अन्ततः इस नश्वर संसार से विदा हो गए, तो उनकी पुत्री देवी ही थीं जो हर समय पिता की सेवा में उपस्थित रहीं। ऐसे समय में श्री लालचन्द की एक विद्यार्थिनी कैकेयी पहिलाजराय आडवाणी भी इस वयोवृद्ध

साहित्यकार की सेवा में दिन-रात उपस्थित रही थी। वह, श्री लालचन्द की धर्मपुत्री थी। ऐसा था पिता और पुत्री के मध्य मोह और स्नेह का सम्बन्ध।

शिक्षा क्षेत्र में सुधार

श्री लालचन्द ने अपनी आयु का अधिकांश समय अध्यापन में व्यतीत किया। यह उनकी रूचि अनुसार कार्य था। बालकों को पढ़ाने में उन्हें अत्यानन्द अनुभव होता था। बचपन में अपने पाठशाला जीवन के आरम्भ में स्वयं ने जिन कठिनाइयों को भोगा था, बड़े होने पर स्वय अध्यापन आरम्भ करने पर उनसे बालकों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली। शिक्षा में अत्याधिक पिछड़े विद्यार्थियों को शिक्षित कर उन्हें बुद्धिमान बनाने में तो वे सिद्धहस्त थे। बच्चों को पीटने के वे र्स्वथा विरुद्ध थे। 'अध्यापक की मार, बालक का सुधार' उक्ति के लिए वे कहते थे कि— यह कथन मुझ पर लागू नहीं है। बच्चों को दण्डित कर उनसे कार्य करवाना उन्हें कदापि पसन्द नहीं था। उनके अध्यापन का ढंग यही था कि वे प्यार-पुचकार से बालकों से कार्य करवाते थे। पाठशाला में वे बालकों का, शिक्षाप्रद एवं रुचिकर कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन करते हुए उन्हें शिक्षा देते थे। पाठशाला में होने वाले उत्सवों के लिए वे प्रायः छोटे-छोटे नाटक स्वयं लिखकर बालकों से ही मंच पर प्रस्तुत करवाते थे।

शिक्षा के सम्बन्ध में श्री लालचन्द के अपने कुछ सिद्धान्त तथा आदर्श थे। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में एक ओर प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर भारत में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन ज़ोर पकड़ने लगा। १९१६ ई. में लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनी बीसेन्ट ने होमरूल आंदोलन आरम्भ किया, तो १९२० ई. में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन छेड़ दिया। इसी समय में ही श्री लालचन्द ने कराची में "तिलक-आलय" नाम से एक विद्यालय स्थापित किया। उस विद्यालय में विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण के अतिरिक्त उनमें राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने पर भी बल दिया जाता था। विधालय की स्थापना के कुछ समय बाद ही लालचन्द जी असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण जेल भेज दिए गए। एक वर्ष की सजा भोगने के पश्चात जब वे बाहर आए तो पुनः 'तिलक-आलय' का काम सम्भाला। इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे श्री गुलाम दस्तगीर मिर्ज़ा और लालचन्दजी स्वयं प्रधानाचार्य (प्रिन्सीपल) थे। श्री गुलाम दस्तगीर भी पक्के कांग्रेसी विचारों के थे। उन्होंने 'महात्मा गांधी' नाम से गांधीजी की जीवनी पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी, जिसकी भूमिका

के लेखक श्री लालचन्द थे। इस प्रकार ये दोनों साथी, बालकों में राष्ट्रीय भावनाएं भरते रहे। 'तिलक-आलय' विद्यालय चार-पाँच वर्ष ही चल सका। इसके पश्चात लालचन्द जी ने कुछ समय १९३२ ई. में श्री ताराचन्द शहाणी के विद्यालय में फिर अध्यापन किया।

सिन्ध में लालचन्दजी को, लड़कियों की शिक्षा का प्रचार करने की बहुत लगन लगी हुई थी। इस कारण उन्होंने वर्ष १९३४ ई. में कराची में 'इण्डियन वूमेन्स कालेज' खोला। इसके माध्यम से लड़कियों को, बम्बई में महर्षि कर्वे द्वारा आरम्भ की गई एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी की परीक्षाएं दिलवाते थे। कालेज की कक्षाएं श्री केवलराम दयाराम शहाणी की "शरणागत बिल्डिंग" में चलाते थे। यह कालेज भी पांच-छः वर्ष बड़े ज़ोर-शोर के साथ चला, उसके बाद दिन पर दिन पिछड़ता गया। इस कालेज से सन् १९४०-४१ ई. तक बहुत सी लड़कियां शिक्षा प्राप्त कर स्वयंपाठी छात्राओं के रूप में यूनिवर्सिटी की परीक्षाएं देती रही थीं। उन्हीं दिनों वर्ष १९३६ ई. में श्री लालचन्द कराची में बन्दर रोड़ पर चलने वाले 'मारवाड़ी कन्या महाविद्यालय' के प्रिन्सीपल भी रहे थे। वर्ष १९३७ ई. में श्री भेरुमल महरचन्द आडवाणी के सेवा निवृत्त होने पर लालचन्दजी कराची में कुछ माह के लिए 'श्री डयाराम जेठमल सिन्ध कालेज' में भी सिन्धी विषय पढ़ाने के लिए पदस्थापित हुए थे।

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के पश्चात लालचन्दजी ने बम्बई को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। श्री लालचन्द के घनिष्ट मित्र तथा समधी श्री जेठमल परसराम पहले ही अपने परिवार सहित बम्बई चले गए थे। इसलिए श्री लालचन्द भी अपनी पुत्री तथा बच्चों के मोह के कारण अधिक समय तक सिन्ध में अकेले ठहर नहीं सके। वर्ष १९४८ के आरम्भ में वह भी अपनी अमूल्य निधि (प्रकाशित पुस्तकें और हस्ताक्षर चाहे अन्य साहित्यिक पूंजी) समेट कर बम्बई आ पहुँचे। बम्बई पहुँचते ही श्री लालचन्द, श्री आसानन्द मामतोरा और कुछ अन्य शिक्षाविदों ने मिलकर 'सिन्धी विद्या मण्डल' नाम से एक संस्था की स्थापना की। दूसरी तरफ १ मई, १९४९ ई. को एलफिन्स्टन टेक्नीकल हाई स्कूल के शानदार भवन में धोबी तलाव पर सिन्धी हाई स्कूल आरम्भ किया गया, जिसका नाम रखा गया 'हाई स्कूल फार सिन्धीज़', श्री आसानन्द मामतोरा उसके प्रिन्सीपल बने और श्री लालचन्द बने वहां के अध्यापक। इसी शिक्षण संस्था की ओर से बाद में मध्य आयलैण्ड (बम्बई) और अकबर रिफ्यूजी कैम्प (थाणा, बम्बई) में भी सिन्धी हाई स्कूल खोले गए। इसका विशेष कारण यह था कि सिन्ध छोड़कर इन क्षेत्रों में आने वाले सिन्धियों के लिए सरकारी कैम्प खोले गए थे, जहां सिन्धी बच्चों की

शिक्षा के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं थी।

बम्बई में श्री लालचन्द का जुड़ाव एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी से पुनः हो गया। उनके प्रयासों से इस यूनिवर्सिटी में बी.ए. तक सिन्धी विषय स्वीकृत कर उसकी पढ़ाई आरम्भ करवाई गई। इतना ही नहीं वरन् अन्य विषय भी सिन्धी माध्यम से पढ़ाए जाने की स्वीकृति यूनिवर्सिटी द्वारा प्रदान की गई। ऐसी व्यवस्था अन्य किसी यूनिवर्सिटी द्वारा नहीं की गई थी। वर्ष १९५२ से १९५३ तक लालचन्दजी इस यूनिवर्सिटी में सिन्धी तथा अन्य विषय पढ़ाने के लिए जाया करते थे। जैसा कि इतिहास, अर्थशास्त्र इत्यादि विषयों के लिए निर्धारित पुस्तकें सिन्धी भाषा में उपलब्ध नहीं थीं, अतः लालचन्दजी स्वयं अंग्रेजी पुस्तकों से सिन्धी में अनुवाद कर आवश्यक बिंदु (NOTES) लड़कियों को लिखवा दिया करते थे। श्री लालचन्द के प्रयासों के फलस्वरुप ही इस यूनिवर्सिटी में एम.ए. में भी सिन्धी विषय का आरम्भ हुआ।

उस समय हिन्दुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों में जहाँ सिन्धी लोग पर्याप्त संख्या में आ बसे थे, वहाँ न केवल सिन्धियों के लिए सिन्धी विद्यालय स्थापित किए गए, अपितु उनके लिए नवीन पाठ्यक्रमानुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार करवा कर बालकों को उपलब्ध करवाने का भी श्रीगणेश किया गया। लालचन्दजी ने इस कार्य में भी पूर्ण रुचि ली। उन्होंने प्राथमिक कक्षाओं में सिन्धी सिखाने के लिए रीडर तैयार किए, जो कुछ विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के रूप में भी स्वीकृत हुए। इस प्रकार, अन्त तक श्री लालचन्द का सिन्धियों की शिक्षा से गहरा सम्बन्ध रहा।

सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य

श्री लालचन्द का झुकाव सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों की ओर बचपन से ही था। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने दूसरे प्रकार की शिक्षा (नैतिक शिक्षा आदि) श्री नवलराय हीरानन्द अकेडमी जैसे आदर्श विद्यालय में प्राप्त की थी। इस विद्यालय का वातावरण ही इस प्रकार का था। विद्यालय के संस्थापक साधु हीरानन्द ने मई १८९० में अपने विद्यालय में एक 'आशा टोली' (Band of Hope) स्थापित की थी जिसका उद्देश्य था कि लोगों की शराब पीने की बुरी आदत को छुड़वाया जाए। उस टोली की तरफ से बाज़ारों में और सार्वजनिक स्थानों पर छोटे-छोटे प्रहसन प्रस्तुत किए जाते थे। उनके द्वारा शराब पीने से होने वाले बुरे प्रभावों को आकर्षक और प्रभावी ढंग से उभारा और निंदा जाता था। साधु हीरानन्द और साधु नवलराय के देहान्त पश्चात यह कार्य

श्री कौड़ोमल चन्दनमल खिलनाणी, श्री प्रभदास शेवकराम आडवाणी और उनके कुछ अन्य साथियों ने सम्भाला। श्री प्रभदास आडवाणी ने अकेडमी से अलग होकर, जब सन् १८९७ ई. में 'नव विद्यालय' नाम से अपना अलग से विद्यालय स्थापित किया, तब वहां भी युवा विद्यार्थियों की एक 'आशा टोली' स्थापित की। इस टोली की ओर से प्रायः जुलूस भी निकाले जाते थे। श्री लालचन्द अपने विद्यार्थी जीवन में ऐसे कार्यों में सदा अग्रणी रहते थे। एक संस्मरण में उन्होंने उस टोली का मनोरंजक चित्र प्रस्तुत किया है। वह उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया ज रहा है :

· सावधान ! सावधान ! आ रहा है....१०

हैदराबाद में, १९०३ ई. में, फौज के एक गोरखे सिपाही को भूख ने बहुत सताया। सो वह हाथ में तलवार लेकर बाज़ार होता हुआ शहर में आया, और जो भी उसके सामने आ रहा था उसे घायल करता हुआ 'छोडकी बाज़ार' के पास से निकला। उसी समय शहर में हड़ताल हो गई।

नव विधालय की आशा टोली, महीने-पन्द्रह दिनों में शराब के विरुद्ध प्रचार हेतु, संध्या के पश्चात निकलती थी।

मैं पढ़ता तो था अकेडमी में, परन्तु इस काम में सहयोग देने के लिए हर बार विद्यालय के अपने मित्रों के साथ जा मिलता था।

एक बार गीत गाते हुए आकर झूड़ेमलाणी की गली के निकट खड़े हुए।

गीत समाप्त हुआ तो विद्यालय के सहयोगी श्री प्रभदास चिल्लाए-सावधान ! सावधान ! आ रहा है .....आ रहा है...हत्यारा, हाथ में तलवार लेकर...

लोग तो पहले से ही घरबराए हुए थे, ऊपर से जो यह हल्ला सुना तो अत्याधिक भयभीत हो गए। आसा-पास की दुकानें बन्द हो गईं।

हम एकत्रित लड़के एक दूसरे से सटते, फंसते जा रहे थे।

ऐसी भागमभाग मची कि एक गूजर का गधा दूध सहित नाले में जा गिरा, और हमारी टोली का एक 'तीन मन ही देह' मूर्छित होकर गिर पड़ा !

लोग संज्ञाहीन हो गए। गिरे पड़े लोगों को उलांघते-फांदते भागे जा रहे थे।

वह श्रीमान अपनी ही धुन में चिल्लाए जा रहे थे— आ रहा है, हत्यारा हाथ में तलवार लिए हुए...घायल करता हुआ...

लोगों में और अधिक भय...और अधिक धक्कम धक्का !

अन्त में जब वह श्रीमान चिल्लाए-हत्यारा, वह कौन है ? वह हत्यारा है शराब, खाना खराब...

तब जाकर कहीं लोगों को ढाढ़स बंधा, और चैन की सांस ली।

वैसे हर एक यही समझ रहा था कि, अभी हत्यारे की तलवार का शिकार होता हूँ।

अध्यापन के दिनों में लालचन्दजी ने सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर बहुत से एकांकी तथा प्रहसन लिखे। उन्हें वे प्रायः विद्यालयी छात्रों से मंचित करवाते थे। यदाकदा वे स्वयं भी नाटकों में भाग लिया करते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के कारण उन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही खादी पहनना आरम्भ किया और जीवन पर्यन्त पहनते रहे। कभी-कभी सैर-सफ़र पर निकलते तो स्काउटों के स्वयं सेवकों जैसी ख़ाकी निकर पहनते थे। सिन्ध में बाढ़ आती या अन्य कोई प्राकृतिक विपदाएं आतीं, तो लालचन्दजी तुरन्त अपने अन्य सभी काम छोड़कर लोगों की सेवा के लिए तत्पर हो जाते थे। इन सामाजिक कार्यों के कारण भी वे सिन्ध के अनेक ग्राम घूमे। वे ग्रामीणों के प्रेम-प्यार और आतिथ्य की मुक्तकंठ से सराहना करते थे।

१९२० ई. में महात्मा गांधी द्वारा आरम्भ किए गए असहयोग आंदोलन में जब सिन्ध वासियों ने भाग लिया, तब श्री लालचन्द भी इस आंदोलन में सम्मिलित हुए थे। जनवरी १९२२ ई. में उन्हें कराची में गिरफ्तार किया गया और एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। आठ माह उन्होंने थाणा (बम्बई) के जेल में बिताए और शेष चार माह कराची जेल में। इसका विशेष कारण था लाडली पुत्री का विछोह, जो उस समय केवल छः वर्ष की थी।

श्री लालचन्द को नेत्र रोग पहले भी एक दो बार हुआ था। जेल में पढ़ने-लिखने और स्वास्थ्य के लिए ठीक से भोजन न मिलने के कारण उनकी आँखें फिर से खराब हो गईं और जेल में रहते हुए ही उन्हें आंखों का 'ऑप्रेशन' करवाना पड़ा।

राष्ट्रीय आंदोलन में श्री लालचन्द बहुत सक्रिय रहे और कुछ समय कराची ज़िला कांग्रेस के सचिव भी रहे। बम्बई को सिन्ध से अलग करने के आंदोलन ने जब बहुत ज़ोर पकड़ा तब लालचन्दजी ने उसमें भी भाग लिया। वे उन सिन्धियों में से एक थे, जिन्होंने बम्बई को सिन्ध से अलग करने की योजना का अत्यन्त प्रभावपूर्ण शब्दों में समर्थन किया था।

साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में

श्री लालचन्द ने अपने बचपन की स्मृतियों के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, उनमें से एक में उन्होंने व्यक्त किया है कि वे अभी पांच वर्ष के ही थे कि सिन्धी लिखना-पढ़ना अपने दादा से सीखे। दादा के पास जो पत्रादि आते थे वे उन्हें बिना किसी हिचक, भली भांति पढ़ जाते थे। इस प्रकार उन्हें लिखने पढ़ने का चाव बालपन में ही उत्पन्न हुआ।

अपने विद्यालय जीवन में उन्होंने जो कुछ लिखा, उसकी कोई विशेष झलक अब नहीं मिलती। उनकी प्रथम लघु रचना जो प्रकाश में आई है, वह है "हुर मुखीअ जा" (मुखिया के लुटेरे)। यह रचना उन्होंने तब लिखी थी जब वे सन् १९०३ में मैट्रिक्यूलेशन उत्तीर्ण करने के पश्चात श्री नवलराय हीरानन्द अकेडमी में अध्यापन करते थे। यह रचना प्रथम बार श्री डयाराम जेठमल सिन्ध कालेज की स्मारिका में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों ही लालचन्दजी ने एक उपन्यास लिखा जिसका नाम था "चोथ जो चण्डु" (चौथ का चन्द्रमा)। आरम्भ में यह उपन्यास 'सरस्वती' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका में किस्तों में वर्ष १९०५ व १९०६ के पर्चों में प्रकाशित हुआ। सिन्धी के आरम्भिक प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यासों में उसका प्रमुख स्थान है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यह उपन्यास लालचन्दजी ने बीस-इक्कीस वर्ष की आयु में लिखा था। 'सरस्वती' पत्रिका साधु हीरानन्दजी ने सन् १८९० में आरम्भ की थी। सन् १८९३ में उनके देहान्त पश्चात श्री प्रभदास शौकीराम आडवाणी ने कुछ वर्षों तक इस पत्रिका को नियमित रूप से हर माह प्रकाशित किया। तत्पश्चात अकेडमी के प्रिन्सीपल ही इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक तथा प्रकाशक होते थे।

लालचन्द जी जब मदरसे में अध्यापक बने, तब उन्होंने वर्ष १९१० ई. में शाह के रिसाले के 'सुर केडारो ऐं सुर सींह केडारो' (सुर केदार ओर सुर सारंग) पर एक समीक्षात्मक पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवाई। उसमें सुर सम्बन्धी बिन्दुओं को समझाते हुए उन पर विशेष प्रकाश डाला है। मदरसे में अध्यापन करते हुए, लालचन्दजी ने 'मुहम्मद रसूल अल्लाह उर्फ़ हज़त मुहम्मद जी हयातीअ जो अहवालु' (मुहम्मद रसूल अल्लाह उर्फ़ हज़्रत मुहम्मद की जीवनी) नाम से एक अनुसंधानात्मक पुस्तक लिखकर वर्ष १९११ में प्रकाशित करवाई।

सन् १९१४ ई. में जब एक ओर प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर पूरे भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आंदोलन जोर पकड़ रहा था। ऐसे कठिन समय

में श्री लालचन्द, श्री जेठमल परसराम और अन्य कुछ साथियों ने मिलकर 'सिन्धी साहित सोसायटी' (सिन्धी साहित सोसायटी) सन् १९१४ में स्थापित की। यह सोसायटी सहकारी सिद्धान्त पर आधारित थी, जिसके अध्यक्षों का एक बोर्ड भी बनाया गया। पहले इसका नाम 'सिन्धी साहित प्रचारक सोसायटी', रखा गया था, पर वर्ष भर बाद उसे छोटा कर केवल 'सिन्धी साहित सोसायटी' कहा जाने लगा। सोसायटी की ओर से एक मासिक साहित्यिक पत्रिका का आरम्भ जनवरी १९१४ ई. से किया गया। हर माह एक छोटी पुस्तक तीस-चालीस पृष्ठों की प्रकाशित की जाती थी। इस पत्रिका की प्रथम पुस्तक थी, "हुर मुखीअ जा" (मुखिया के लुटेरे) जिसके लेखक थे श्री लालचन्द। यह रचना पहले श्री डयाराम जेठमल सिन्ध कालेज की स्मारिका में प्रकाशित हुई थी, जिसे फिर कुछ आवश्यक फेर-बदल कर लालचन्दजी ने पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया था।

सिन्धी साहित सोसायटी की स्थापना हैदराबाद सिन्ध में की गई थी। श्री सरनानन्द हासोमल हैदराबाद में अवैतनिक सचिव के रूप में पत्रिका के प्रकाशन और विक्रय आदि का काम देखते थे। पत्रिका का वार्षिक शुल्क मात्र एक रुपया था, जिसमें वर्ष भर में ग्राहकों को बारह पुस्तकें दी जाती थीं। श्री लालचन्द सोसायटी के सामान्य सचिव थे और श्री जेठमल परसराम पत्रिका के सम्पादक बने। एक-डेढ़ वर्ष पश्चात श्री जेठमल ने इस पद से त्याग-पत्र दे दिया तो यह भार भी लालचन्दजी के कंधों पर आ गया। वर्ष १९१६ में सोसायटी का कार्यालय भी हैदराबाद से बदलकर कराची में खोला गया और पत्रिका का प्रकाशन भी कराची से होने लगा। इस प्रकार देखा जाए तो पत्रिका के प्रकाशक और सम्पादक जनवरी १९१६ से श्री लालचन्द स्वयं थे और सोसायटी का कार्य भी वे ही सम्भालते रहे।

प्रथम वर्ष में सिन्धी साहित सोसायटी की ओर से जो बारह पुस्तकें मासिक पत्रिकाओं के रूप में ग्राहकों को दी गईं, वे इस प्रकार हैं :- (१) हुर मुखीअ जा (श्री लालचन्द अमरडिनोमल) (२) हीर राँझो ऐं समो गुन्दरी (श्री जेठमल परसराम) (३) प्रेम जो महात्म (श्री भेरुमल महरचन्द) (४) मौलाना रोमी (श्री लालाराम प्रेमचन्द) (५) व मुँड्यूं (श्री कौड़ोमल चन्दनमल) (६) शैतान जी नानी (मिर्जा क़लीच बेग) (७) नूरजहां (श्री बूलचन्द दयाराम) (८) सिहत सिख्या (डा० हरनामदास) (९) सरोजनी (श्री निर्मलदास फतहचन्द) (१०) जेब-उल-निसा (मुहम्मद सदीक मेमण) (११) सिन्धी शेर (श्री मिर्ज़ा कलीच बेग) (१२) महाभारी लड़ाई (श्री जेठमल परसराम)। इससे स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न विषयों और लेखकों के चयन पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

इन मासिक छोटी पुस्तकों के साथ सोसायटी की ओर से बड़ी साहित्यिक पुस्तकें भी अलग से प्रकाशित करने का क्रम आरम्भ किया गया। उनमें प्रथम पुस्तक श्री लालचन्द कृत "शहाणों शाहु" है जो शाह अब्दुल लतीफ़ के कलाम का समीक्षात्मक अध्ययन है। यह पुस्तक वर्ष १९१४ में प्रकाशित हुई थी। तत्पश्चात इस क्रम में अन्य जो साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित हुईं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :–"मोतियुनि जी दबिली" (श्री मिर्ज़ा कलीच बेग), "राम बादशाह" (श्री लालचन्द अमरडिनोमल), "भाई कलाचन्द" (श्री जेठमल परसराम), "सुन्दरी" (श्री लीलाराम सिंह वतणमलु लालवाणी), " ही हो छा ?" (श्री लालचन्द अमरडिनोमल)।

सिन्धी साहित सोसायटी की मासिक पत्रिका के विषय में लालचन्दजी लिखते हैं, "उस पत्रिका का सिन्धियों ने अत्यन्त भव्य स्वागत किया। आरम्भ में ही तीन हज़ार ग्राहक हो गए। इस पत्रिका के सर्वप्रथम सम्पादक भाई जेठमल परसराम थे, एक-डेढ़ वर्ष बाद भाई जेठमल ने त्याग-पत्र दे दिया, तो यह काम आ पड़ा इस लेख के लेखक पर। मैंने पूरे सात वर्ष अर्थात १९२१ तक सम्पादन सम्भाला। तत्पश्चात पत्रिका का कार्य कुछ समय तक 'एन. एच्छ. पंजाबी' वाले चलाते रहे, यहाँ तक कि १९२७ में यह मासिक पत्रिका, जिस पर सिन्धी साहित्य सोसायटी वालों के हज़ारों रुपये व्यय हुए थे, बन्द हो गई।"११

इसमें सन्देह नहीं कि सोसायटी के माध्यम से श्री लालचन्द ने सिन्धी जनसाधारण में साहित्य अध्ययन की जो रूचि उत्पन्न की, वह पहले नहीं थी। इस शताब्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में इस सोसायटी की पुस्तकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन् १९२० के आस-पास कुछ अन्य प्रकाशक भी मैदान में आ गए, जो मासिक पत्रिकाओं के रूप में क्रमवार पुस्तकें प्रकाशित करके, सिन्धी साहित्य को समृद्ध करने लगे।

श्री लालचन्द लिखने-पढ़ने में इतनी रूचि रखते थे, कि जब सन् १९२२ में राष्ट्रीय आंदोलन में गिरफ्तार हुए, और एक वर्ष के कारावास की सजा हुई थी, तब वहां भी अपना समय लिखने में व्यतीत कर उसका सदुपयोग किया। "सच तां सदिके", 'सदा गुलाबु", "जेल जी डायरी" और कुछ अन्य कहानियां उसी अवधि में लिखकर तैयार की थीं।

श्री जेठमल परसराम की भांति लालचन्दजी को भी पत्रकारिता का बहुत चाव था। भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं में उनके लेख और कहानियां लगातार प्रकाशित होते रहते थे। कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों के

सम्पादन का कार्य भी उन्होंने किया। श्री जेठमल परसराम ने १९२० में "रूह रिहाण" नाम से पत्रिका का विशेष रूप से 'थियासॉफी' के प्रचार के लिए आरम्भ किया, तो लालचन्दजी उसमें उनके साथी बने। सन् १९२२ में साप्ताहिक समाचार पत्र 'प्रकाश" आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक जून १९२९ से श्री जेठमल थे और श्री लालचन्द उस पत्र के सह-सम्पादक बने। कराची से श्री मोती लालवाणी ने सन् १९३९ में "सिन्धुड़ी" नाम से साप्ताहिक समाचार पत्र आरम्भ किया। २६ जून १९३९ के अंक से श्री लालचन्द उस साप्ताहिक के सम्पादक नियुक्त हुए। हर एक पर्चे में लालचन्दजी देश की स्थिति पर समीक्षा लिखने के साथ-साथ साहित्यिक निबन्ध और कहानियां भी लिखने लगे। १९३३ में श्री शेवक भोजराज ने बालकों के लिए मासिक पत्रिका "गुलिस्तान" आरम्भ की। इस पत्रिका के वर्ष १९३८ से १९४२ तक श्रीमती पार्वती गिदवाणी के साथ श्री लालचन्द भी सह-सम्पादक थे। उस समय उन्होंने बालकों के मनोरंजनार्थ चुटकले, ज्ञानवर्धक निबन्ध, छोटे-छोटे गीत और अपने बचपन के जीवन की रोचक घटनाएं प्रकाशित कर, सिन्धी में "बाल-साहित्य' को भी समृद्ध किया। वर्ष १९३२ में श्री बूलचन्द वसोमल राजपाल ने मियां जो गोठ, (मियां का गांव, जिला सक्खर सिन्ध) से 'सिन्धु' नाम से एक मासिक साहित्यिक पत्रिका आरम्भ की, सिन्धी साहित्य में इस पत्रिका का विशेष स्थान है। इस पत्रिका में भी श्री लालचन्द लगातार भिन्न-भिन्न विषयों पर लेख लिखते रहे।

अगस्त १९४० में श्री जी०एम० सैयद साहब, तत्कालीन मन्त्री, शिक्षा मन्त्रालय सिन्ध के प्रयासों और आदेश से "सिन्धी साहित्य के लिए केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Control for Sindhi Literature) कराची में स्थापित किया गया। उसके अध्यक्ष, सैयद मीरान मुहम्मद शाह थे और सचिव थे श्री उस्मान अली अन्सारी। श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी बोर्ड के संयुक्त सचिव नियुक्त हुए। इस बोर्ड की तरफ से सिन्धी साहित्य के प्रोत्साहन और समृद्धि के लिए श्रेष्ठ सिन्धी पुस्तकों पर प्रति वर्ष पुरस्कार भी दिए जाते थे। सन् १९४५ में बोर्ड की ओर से सिन्धी में एक उच्चस्तरीय साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित किए जाने की योजना बनाई गई। उसके लिए डाक्टर उमर मुहम्मद दाऊद पोटे ने 'महराण' नाम का सुझाव दिया, जो सब लोगों को अत्यन्त रूचिकर लगा। 'महराण' के लिए एक सम्पादकीय मण्डल स्थापित हुआ, जिसके चार सदस्य थे। श्री उस्मान अली अन्सारी अध्यक्ष, मौलवी दीन मुहम्मद वफ़ाई, मुख्य सम्पादक 'महराण', श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी प्रबन्ध

सम्पादक और डाक्टर हरूमल सदारंगाणी, सदस्य। पत्रिका के लिए सामग्री एकत्रित करने और प्रकाशित करवाने का उत्तरदायित्व अधिकांशतः लालचन्दजी के कंधों पर था।

बोर्ड ने निर्णय किया कि 'महराण' मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया जाए। परन्तु वह कभी भी समय पर हर माह प्रकाशित नहीं हो सका। जनवरी १९४६ में 'महराण' का प्रवेशांक प्रकाशित हुआ, द्वितीय अंक अप्रेल १९४६ में प्रकाशित हुआ। शेष अंक भी बहुत देर से और कई महीनों के संयुक्तांक प्रकाशित किए जाते थे। इस कारण प्रथम वर्ष में ग्राहकों को मात्र छः अंक ही मिल सके, वे भी समय पर नहीं। दूसरे और तीसरे वर्ष में भी 'महराण' की यही स्थिति रही। प्रथम दौर में 'महराण' का अन्तिम अंक जून १९४८ में प्रकाशित हुआ, जो जनवरी से जून तक का छः माह का संयुक्तांक था। श्री लालचन्द यह अंक तैयार कर सिन्धुड़ी को प्रमाण कर भारत चले आए।

श्री लालचन्द द्वारा संचालन के इस दौर में 'महराण' का जो साहित्यिक स्तर उन्होंने स्थापित किया था, वह सिन्ध की किसी अन्य पत्रिका का बिरले ही मिलेगा। 'महराण' में लालचन्द जी ने 'हल तलब' (पहेलियां) शीर्षक से कठिन शब्दों अथवा बैतों (कविताओं) का अर्थ समझाने के लिए पाठकों के सम्मुख साहित्यिक समस्याएं प्रस्तुत कीं। दूसरी तरफ कुछ सजग पाठकों ने 'महराण' में प्रकाशित सामग्री से त्रुटियाँ निकालकर, उन पर स्वस्थ समीक्षा की। एक जागरूक सम्पादक के नाते श्री लालचन्द ने ऐसे पत्रों और निबन्धों को 'महराण' में उचित स्थान दिया। 'महराण' १९४७ के अगस्त माह के अंक में पृष्ठ ४१ पर उन्होंने एक 'सम्पादकीय टिप्पणी' लिखी है, जो यहाँ दी जा रही है। इससे स्पष्ट है कि समीक्षा के विषय में श्री लालचन्द का क्या मत था। वे लिखते हैं :-

'त्रुटियाँ दूर कीजिए' शीर्षक से बहुत सी सामग्री हमें प्राप्त हुई है, जिसमें एक बहुत बड़ा निबन्ध हमारे बोर्ड के उपाध्यक्ष श्री भैरूमल महरचन्द का लिखा भी है। इस सम्बन्ध में दूसरा निबन्ध आज ही हमारे प्रतिष्ठित मित्र और निबन्ध लेखक प्रोफेसर नबीबख़्श बलोच का अमेरिका से प्राप्त हुआ है। हम यह सम्पूर्ण सामग्री किस्तों में 'महराण' में प्रकाशित कर देंगे। अन्य लोग भी इस दिशा में अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। 'महराण' में स्थान की कोई कमी नहीं। समीक्षा कला-साहित्य का एक विशेष अंग है, समीक्षा के माध्यम से ही कला-साहित्य उन्नत हो सकेगा।"[१२]

महराण के ये अंक साहित्यिक स्तर और समीक्षा की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी

हैं। इसी कारण बम्बई यूनिवर्सिटी ने इस पत्रिका को मान्यता देकर, बी. ए., और एम. ए. के विद्यार्थियों को उनके अध्ययन की सिफारिश की।

सन् १९४० में "सिन्धी साहित्य के लिए केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड" ने सिन्धी शब्दकोश तैयार करवाने की योजना बनाई। इसके लिए कुछ सिन्धी विद्वानों की एक समिति गठित की गई। श्री लालचन्द अमरडिनोमल और श्री भेरूमल महरचन्द भी इस शब्दकोश के सम्पादक मण्डल में सम्मिलित थे। इस दिशा में प्रथम चार अक्षरों (अलिफ़, ब, ब़ और भ) तक शब्दकोश तैयार हो चुका था परन्तु किन्ही अड़चनों के कारण कार्य आगे नहीं बढ़ सका। ऊपर से हुआ देश का बटवारा, तो शब्दकोश तैयार करने की यह योजना कुछ वर्षों के लिए पूर्ण रूप से बन्द हो गई।

सन् १९४० में कराची में सिन्धी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसकी अध्यक्षता सिन्ध के प्रसिद्ध शायर (कवि) श्री किशनचन्द तीर्थदास खत्री 'बेवस' (१८८५-१९४७) ने की थी। लालचन्दजी इस सम्मेलन के व्यवस्थापकों में से एक थे। इस प्रकार श्री लालचन्द पत्रकारिता और सिन्धी साहित्य के दिभिन्न क्षेत्रों में तन्मयता से भाग लेते रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश का बटवारा हुआ। सन् १९४८ के आरम्भ में श्री लालचन्द आकर बम्बई में बस गए। अपने साथ, अपनी लिखित सामग्री और दूसरी बहुत सी साहित्यिक पूंजी बोरियों में भरवाकर बम्बई ले जाने के लिए उन्होंने तैयार करवा ली थी। किन्तु भारत आते समय बहुमूल्य पुस्तकों की बोरियां रास्ते में ही चोरी हो गईं , इस क्षति का उन्हें इतना दुख हुआ कि बम्बई पहुंचते ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। अन्त तक इस हानि का मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव रहा।

बम्बई पदार्पण के समय उन्होंने जीवन के बासठ वर्ष पूर्ण कर लिए थे। इस आयु में भी उनकी साहित्यिक गतिविधियाँ घटी नहीं थीं। उनका उत्साह पहले से भी अधिक था। बम्बई में 'सिन्धी साहित्य मण्डल' स्थापित हुआ, तो लालचन्दजी ने उसकी सभाओं और साहित्यिक गोष्ठियों में भी बहुत रूचि ली। वे समय-समय पर साहित्य की राह में युवा सिन्धी लेखक-लेखिकाओं का मार्गदर्शन करते रहे। उन्होंने कुछ समय तक बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दुस्तान' तथा 'हिन्दवासी' समाचार-पत्रों के सम्पादक मण्डल में भी कार्य किया। छः वर्षों की अल्पावधि में ही उन्होंने शैक्षिक पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कई साहित्यिक रचनाएं भी लिखकर प्रकाशित करवाईं। उनमें से मुख्य हैं—

१. 'लगु नंढो, जीउ घणों' (ठगो छोटे, जीओ अधिक)। यह पुस्तक गेलार्ड हासर की अंग्रेजी पुस्तक 'लुक यंगर, लिव लांगर' (Look Younger, Live Longer) का सिन्धी अनुवाद है। पूर्व में यह अनुवाद वर्ष १९५३ में 'हिन्दवासी' समाचार पत्र में किस्तों में प्रकाशित होता रहा, पश्चात अप्रेल १९५४ में पुस्तक रूप में छपकर प्रसारित हुआ। लालचन्दजी रुग्णता के कारण बिस्तर पर थे, तब भी उन्होंने इस पुस्तक के 'प्रूफ़' स्वयं जांच-कर दिए थे। उनकी धर्म-पुत्री कुमारी कैकेयी लिखती हैं– "जाने का पूर्वाभास तो उन्हें पहले से ही हो रहा था। उनके देहान्त से चार-पांच दिन पूर्व हिन्दुस्तान प्रेस से प्रूफ़, जाँच के लिए प्राप्त हुए थे। तब मुझसे कहा कि–ये अन्तिम प्रूफ़ जाँच रहा हूँ, इसके बाद फिर कभी नहीं जाँचे जाएंगे। आओ, तुम्हें सिखादूँ कि प्रूफ़ कैसे जांचते हैं।"

२. 'प्रेम जो बलु' (प्रेम-बल) (उपन्यास) - यह पुस्तक ए०डब्लू० सवी के अंग्रेजी उपन्यास का अनुवाद है। यह पुस्तक भी श्री लालचन्द ने अपने देहान्त से अनुमानतः एक माह पूर्व अस्वस्थता की स्थिति में ही लिखकर पूर्ण की थी। उसकी प्रेस प्रति उनकी धर्म-पुत्री कैकेयी ने ही पुनः लिखकर तैयार की थी, और श्री जगत आडवाणी ने 'कहाणी-नाविल माला' (कहानी-उपन्यास माला) की ओर से छपवाकर प्रसारित की थी।

३. 'सामीअ जा सिलोक' (सामी के श्लोक) (तीन भागों में)। इन श्लोकों का श्री लालचन्द ने देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण किया था, जिससे कि भारत में अरबी-सिन्धी लिपि से अनजान बालक भी इस संत कवि की कविता का आनन्द उठा सकें। सेठ परसराम पारूमल ने ये पुस्तकें १९५६-१९५८ में बम्बई से प्रकाशित करवाकर प्रसारित कीं।

इसके अतिरिक्त लालचन्द जी ने बम्बई में कुछ अन्य रचनाओं का भी सृजन किया। जैसे– 'सिन्धी साहित जो निचोड़' (सिन्धी साहित्य-सार) यह अभी तक हस्ताक्षर रूप में है। इसका सारांश हिन्दी में वरधा वालों ने प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया था; 'जीवन-माथर' - शाह के रिसाले के सुर डहर की टीका है, जो पश्चात पुस्तक रूप में 'हिन्दुस्तान किताब घर' वालों ने अगस्त १९५६ में प्रकाशित करवाई।

श्री लालचन्द की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि 'चौथ जो चण्डु' (चौथ का चन्द्रमा) उपन्यास का दूसरा भाग भी लिखकर पूरा करूँ। परन्तु इस कार्य को पूरा करने के

लिए उन्हें अन्तिम समय तक अवसर नहीं मिला। वे कारावास की भांति रुग्णता को भी ईश्वरीय प्रदत समझते थे। बस, बिस्तर पर पड़े तो उन्हें अवकाश मिलता। फिर पड़े-पड़े, पढ़ते-लिखते रहते। इस प्रकार लालचन्दजी की अन्तिम क्षणों तक अपनी लेखनी से मित्रता रहती रही। उनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाओं का वर्णन तृतीय अध्याय में किया गया है।

अन्तिम यात्रा

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने के रूप में, इस देश का बटवारा हुआ। इसका अत्याधिक प्रभाव सिन्धी जाति पर पड़ा। न केवल सिन्ध का पूरा क्षेत्र पाकिस्तान का अंग बना, अपितु बटवारे के पश्चात सिन्धी भाषा और साहित्य की प्रगति को भी अत्याधिक क्षति पहुँची। यह हानि यहाँ तक ही सीमित रहती, तो भी सिन्धी लोग इस आघात को सहन कर लेते। बटवारे पश्चात वयोवृद्ध सिन्धी लेखक जिन्होंने सिन्धी साहित्य को, विशेषकर सिन्धी गद्य को अत्यन्त उच्चता प्रदान की, वे एक दूसरे के पीछे स्वर्गधाम को प्रस्थान करते रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के वर्ष, सिन्ध में ही डाक्टर होतचन्द मूलचन्द गुरुबख़्शाणी ११ फरवरी १९४७ पर परलोक सिधारे। उनके सात माह पश्चात ही श्री किशन चन्द तीर्थदास खत्री "बेबस" का देहान्त भी सिन्ध में ही २३ सितंबर १९४७ को हो गया। विस्थापन के बाद भारत आने के पश्चात ७ जुलाई १९४८ को श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी का देहावसान हो गया। तत्पश्चात १९५० में श्री भेरूमल महरचन्द आडवाणी भी इस संसार से विदा हो गए। इनके चार वर्ष पश्चात १८ अप्रेल १९५४ को श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी भी अपने स्वर्गवासी साथियों से जा मिले। अभी दो ही वर्ष बीते थे कि वर्ष १९५६ में श्री सोभराज निर्मलदास सुजान "फानी" भी विदा हो गए।

उधर सिन्ध में भी छः सात वयोवृद्ध सिन्धी मुसलमान लेखक भी एक के पीछे एक इस संसार से विदा हो गए। इस प्रकार १९४७ से लेकर दस वर्षों की अवधि में ही सिन्धी साहित्य के प्रसिद्ध वयोवृद्ध सदा के लिए विछोह दे गए।

श्री लालचन्द के साथी और समधी श्री जेठमल परसराम का जब १९४८ में बम्बई में देहान्त हुआ, तब उनके बेटे, श्री जेठमल के 'फूल' लेजाकर बम्बई के निकट नासिक तीर्थ पर गोदावरी नदी में प्रवाहित कर आए। यह सुनकर लालचन्दजी के मन को अत्यन्त धक्का लगा। उन्होंने कहा– "प्रिय सिन्ध से कटकर हम हिन्द आ गए हैं; परन्तु मरणोपरान्त तो अपने मधुर देश की मिट्टी प्राप्त हो ! हमें और कुछ नहीं तो अपने प्रिय सिन्ध की मिट्टी तो मिलनी ही चाहिए !"

"मुयाई जियास, जे वञे मड़ुहु मलीर डे !"

(मरने पर भी जीवित समान ही हैं, यदि शव मलीर को जाए)

इस कारण, श्री लालचन्द ने बच्चों से कह दिया कि मेरे 'फूल', 'सिन्धु' के सुपुर्द करें। उनके बच्चों ने लालचन्दजी की इस अन्तिम मनोकामना को अवश्य पूर्ण किया।

जीवन के अन्तिम सात-आठ वर्ष किसी न किसी अस्वस्थता में ही बिताए। १९४७ में कराची में अत्याधिक अस्वस्थ हो गए। उनकी गर्दन पर फोड़ा हो गया था। फोड़े की गहराई डेढ़-दो इन्च तक पहुँच गई। श्री लालचन्द का होमियोपैथी इलाज में विश्वास था। इसलिए श्री रोचलदास होमियोपैथ से इलाज करवाते रहे। प्रतिदिन, दिन में दो बार फोड़े को साफ़ किया जाता था। घंटा-घंटा भर उसे साफ़ करने में लग जाता था। उस समय लालचन्दजी की सहन शक्ति देखने योग्य होती थी। जब कभी अत्याधिक पीड़ा होने लगती थी, तो ईश्वर-नाम जपने में ध्यान लगाते थे। इस रुग्णता के कारण वे अनुमानतः तीन माह बिस्तर पर रहे।

विस्थापन पर जब बम्बई आ रहे थे तो उनकी पुस्तकों से भरी बोरियाँ गुम हो गई। एक तो पहले ही अपने पुराने साथियों से बिछड़ने का दुख, ऊपर से इस साहित्यिक पूंजी की क्षति का आघात पहुंचा। बम्बई की जलवायु भी अनुकूल नहीं लगी। इसी कारण प्रायः अपच और अतिसार से ग्रस्त रहते थे वर्ष १९५१ में अत्याधिक अस्वस्थ हो गए। ऐलोपैथी इलाज करवाया। डाक्टर, रोग का सही निदान नहीं कर पाए। ग़लत टीके लगते रहने से रोग और अधिक बढ़ गया, जिससे पूरे छः माह तक बिस्तर पर रहे।

डाक्टर भगवान दास गुरुबख़्शाणी उन्हीं दिनों सिन्ध छोड़कर बम्बई आए थे। वे लालचन्दजी के शुभ चिन्तकों में से एक थे। अतः जब उन्हें लालचन्दजी की अस्वस्थता का समाचार मिला तो अविलम्ब उनसे मिलने गए। उनका होमियोपैथी इलाज आरम्भ किया, जिससे कुछ दिनों में ही लालचन्द जी को लाभ हुआ। आधा वर्ष बिस्तर पर पड़े रहने से वे अत्यन्त निर्बल हो गए थे। पर वे थे बड़े साहसी। सदा कहते थे– स्वयं पर भरोसा रखना चाहिए। स्वस्थ हुए तो फिर काम में जुट गए।

वर्ष १९५३ में, श्री कर्वे द्वारा स्थापित एस०एन०डी.टी० यूनिवर्सिटी से कुछ बातों पर अनबन हो गई। यूनिवर्सिटी के बम्बई वाले कालेज में वे कक्षा लेने जाया करते थे और सिन्धी विषय लेने वाली बालिकाओं को पढ़ाते थे। मतभेद उत्पन्न हो जाने से मन को अत्यन्त धक्का लगा। इन्हीं चिन्ताओं के कारण फिर से अस्वस्थ हो गए। रूग्णता

इतनी बढ़ गई कि बहुत दिनों तक बिस्तर पर रहे। अन्ततः इसी रुग्णता में परलोक सिधारे।

उन्हीं दिनों मद्रास में पी०ई०एन० (P.E.N.) की ओर से एक सम्मेलन हो रहा था, जिसमें लालचन्दजी को पेपर पढ़ना था। सम्मेलन के आयोजकों ने भाड़ा-भत्ता भी देने की हामी भरी थी। टिकट भी आ चुका था, परन्तु परमात्मा को कुछ और ही स्वीकार था। इस रुग्णता से छुटकारा पाना कठिन लग रहा था। पी०ई०एन० के सम्मेलन की अन्तिम बैठक १८ अप्रेल १९५४ को, दोपहर के समय हो रही थी। लालचन्दजी जा नहीं सके, परन्तु अपना लेख पहले ही भेज दिया था। दोपहर की बैठक में जिस समय प्रोफेसर मंघाराम मल्काणी, श्री लालचन्द का पेपर पढ़ रहे थे, उस समय बम्बई में लालचन्द जी ने अपने प्राण त्यागे। श्री लालचन्द को इस संसार से जाने का पूर्वाभास पन्द्रह-बीस दिन पूर्व ही हो चुका था। देहान्त से कुछ दिन पूर्व उनके घर से कुछ वस्तुएं चोरी हो गई थीं, जिनमें उनका पढ़ने का चश्मा भी था। उस पर उन्होंने कहा कि शरीर की पीड़ा से ध्यान हटाने के लिए मैंने पढ़ने में मन को व्यस्त रखना चाहा, पर अब शायद प्रकृति को यह भी स्वीकार नहीं है।

लालचन्दजी का नियम था कि वे स्नान से पूर्व पानी भी नहीं पीते थे। स्नान के पश्चात 'जपु साहब' का पाठ कर, तत्पश्चात ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। अस्वस्थता की स्थिति में भी इस नियम का उलंघन नहीं करते थे। जिस दिन उन्होंने अपने प्राण त्यागे, उस दिन भी इस बात पर अटल रहे। दराज़न के सख़ी कबूल मुहम्मद पर पूर्ण निष्ठा थी। इस कारण उनका चित्र सदा अपने सामने रखा करते थे। देहान्त के समय उन संत के चित्र की ओर देखते हुए कहा– "अब मैं, यह पीड़ा सह नहीं सकता। मुझे आज्ञा दीजिए।" १८ तारीख को सवेरे ही सब घर वालों से कह दिया कि– आज अपनी तैयारी है। अब शरीर में शक्ति भी नहीं रही है। फिर, अपने साथी श्री जेठमल परसराम और डयाराम गिदूमल शहाणी का स्मरण करते हुए कहा– "आज मेरी भी तैयारी है। मैं भी आकर आप लोगों से मिलता हूँ।" दोपहर के साढ़े तीन बजे थे कि लगा उन्हें बहुत बेचैनी हो रही है। सांस लेने में खड़खड़ होने लगी और स्थिति बिगड़ती गई। आखिर शाम के चार बजकर पच्चीस मिनट पर अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। इस प्रकार, सिन्धी के ये महान लेखक सब को विछोह देकर इस संसार से विदा हो गए।

सिन्धु के शरण में

श्री लालचन्द की अन्तिम इच्छा का उनके घर वालों और शुभचिन्तकों ने पूरा ध्यान रखा। इसलिए लालचन्दजी के फूल सम्भाल कर रख दिए गए। बारह दिसम्बर १९५५ पर उनके फूल कराची पहुँच गए। यह निर्णय लिया गया कि १८ अप्रेल १९५६ को लालचन्दजी की द्वितीय बरसी पर उनके फूल सिन्धु (नदी) के पवित्र जल में विसर्जित किए जाएं। यह परंपरा हैदराबाद सिन्ध में लालचन्दजी के मुसलमान चाहे हिन्दू मित्रों ने सम्मिलित रूप से निभायी। सिन्ध के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने उस समय उन्हें जो श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं, उनका संक्षिप्त वर्णन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

कराची में श्री लालचन्द के साथियों और सिन्धी साहित्यकारों की एक बैठक आयोजित की गई। इस बैठक की अध्यक्षता श्री उस्मान अली अंसारी ने की। बैठक में 'स्वर्गवासी लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी बरसी समिति' गठित की गई, जिसने बरसी मनाने का सम्पूर्ण कार्यक्रम निश्चित किया।

कार्यक्रमानुसार १७ अप्रेल १९५६ को, कराची के, जे०एन०जे०वी० हाई स्कूल में सांय साढ़े पांच बजे एक बैठक आयोजित हुई। उसमें लालचन्दजी के साथियों, विद्यार्थियों और सिन्धी साहित्यकारों ने उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किए। दिनांक १८ अप्रेल को, सिन्ध के पांच सिन्धी दैनिक समाचार पत्रों ने विशेषांक प्रकाशित किए, जिनमें श्री लालचन्द के जीवन से संबद्ध चित्रों के कुछ पृष्ठ और साहित्यिक क्षेत्र में की गई उनकी सेवाओं के संबंध में कुछ लेख प्रकाशित किए। 'सिन्धी अदबी बोर्ड' ने स्वर्गवासी की स्मृति में उनकी एक श्रेष्ठ पुस्तक 'सोन वरन्यूं दिल्यूं' प्रकाशित कर १८ अप्रेल को प्रसारित की।

१८ अप्रेल को प्रायः साढ़े छः बजे, श्री उस्मान अली अन्सारी (डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, सिन्ध), श्री अब्दुल वहीद सिन्धी, श्रीयुत नरसिंहम, श्री शफ़ी मुहम्मद अलवी और श्री मोतीराम एस० रामवाणी, स्वर्गवासी के फूल लेकर, मोटरकार द्वारा कराची से हैदराबाद के लिए रवाना हुए। हैदराबाद में उनके फूल बीसेन्ट हाल में रखे गए, जहां दोपहर के समय एक बजे एक सभा आयोजित की गई। ग्रीष्मऋतु, रमज़ान का महीना और अत्यन्त तपन का समय, इस पर भी पूरा बीसेन्ट हाल स्व० लालचन्दजी के प्रेमियों से खचाखच भर गया। वहां भी सिन्धी के इस महान लेखक को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। तत्पश्चात संध्या समय साढ़े पांच बजे सिन्धु (नदी) के किनारे 'गिद्र-मार्क' में सभा आयोजित हुई, जहां अनुमानतः सौ-सवा सौ प्रेमी आ एकत्रित हुए। स्वर्गवासी

के 'फूलों' पर श्रद्धा सुमन और फूल-मालाएं अर्पित की गईं। उसके बाद श्री उस्मान अली अन्सारी ने स्वर्गवासी के फूलों का कलश उठाया और उपस्थित लोगों के साथ, सिन्धु के किनारे की तरफ बढ़े। अत्यन्त भव्य तथा गम्भीर वातावरण में सिन्धी सजनों ने अपने एक वयोवृद्ध साहित्यकार की हार्दिक इच्छा को पूर्ण करने में अपना सहयोग प्रदान किया।

किनारे पर पांच नौकाएं तैयार खड़ी थीं। नौकाओं में जितने लोग बैठ सकते थे, बैठ गए। शेष लोग किनारे पर ही खड़े रहकर, इस श्रद्धापूर्ण कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। नौकाएं जब बीच प्रवाह में पहुंची, तब फकीर होलाराम ने शब्द-कीर्तन किया। भाई अन्सारी ने अपने हाथों से श्री लालचन्द के फूल सिन्धु के पवित्र जल में विसर्जित किए। इस प्रकार अत्यन्त सहिष्णुता और सम्मानपूर्वक यह कार्य सम्पूर्ण किया गया। वह दिन, हिन्दु-मुस्लिम एकता तथा जन्मभूमि से स्नेह का एक अद्भुत उदाहरण है। सिन्ध के इतिहास में यह प्रथम उदाहरण है। भारत चले आए सिन्धी साहित्यकारों में से अभी तक अन्य किसी ने भी ऐसी मंशा प्रकट नहीं की है।

व्यक्तित्व

श्री लालचन्द का शरीर यद्यपि लम्बा-चौड़ा और ऋष्ट-पुष्ट था, तब भी बचपन से ही कोई न कोई व्याधि उन्हें लगी ही रहती थी। तीस वर्ष की आयु में किसी ने उन्हें राय दी कि-व्यायाम करो तो स्वास्थ्य सुधरेगा। उसके बाद वे नियमित रूप से व्यायाम करते रहे और कदाचित स्वास्थ्य को ठीक रखा। पश्चात, डाक्टर मैकफिडन की 'फिज़ीकल कलचर' नाम से नैचरोपैथी पर अमेरिका से प्रकाशित होने वाली पत्रिका के कुछ अंक हाथ लग गए। उनमें दिए हुए स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी नियम भी पढ़े। उसके बाद लालचन्दजी उन नियमों का सदा पालन करते रहे। वे प्रायः रात्रि को पानी में कुछ गेहूँ भिगो देते थे और सवेरे खजूर के साथ वही खाते थे। जब अस्वस्थ होते थे, तो बिस्तर पर लेटे-लेटे ही कुछ व्यायाम भी करते थे। देहान्त से कुछ माह पूर्व 'लगु नन्ढो, जीउ घणो' सिन्धी में अनूदित पुस्तक प्रकाशित करवाई। इससे ज्ञात होता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की जानकारी अन्य लोगों को बताने का उन्हें कितना चाव था।

श्री लालचन्द का वाह्य ऋष्ट-पुष्ट शरीर देखकर उनके मित्र उन्हें 'लालो डकरु' (लाला डंडा) कहकर भी पुकारते थे। यह छेड़ उनके स्वभाव के कारण भी थी। उनका स्वभाव था कि वे जिस बात को सत्य व उचित समझते थे, वह मुंह पर ही दूसरे को कह देते थे, हिचकते नहीं थे। फिर चाहे सामने वाला व्यक्ति रुष्ट ही क्यों न हो जाए।

उनके एक पुराने मित्र ने इस 'छेड़' का एक दूसरा ही कारण बताया। उन्होंने बताया कि अध्यापक लालचन्दजी ने एक बार परीक्षा के लिए एक प्रश्न-पत्र का निर्माण किया था। उस प्रश्न-पत्र में उन्होंने एक विचित्र प्रश्न पूछा। लिखने में समान शब्दों के युग्म दिए, जिनमें प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न था। उनमें से प्रथम युग्म था 'डकरू-डुकरू'। (डकरू-डंडा डुकरू-दुर्भिक्ष) विधार्थी इस प्रश्न को पढ़कर असमन्जस में पड़ गये। फिर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रश्न-पत्र निर्माता लालचन्दजी हैं, तब से उनके लिए कहने लगे कि—कौन से अध्यापक ? कि-डकरू मास्टरजी ? (डंडा वाले अध्यापकजी, जिन्होंने डंडा वाला प्रश्न पूछा था।)

धार्मिक दृष्टि से लालचन्दजी पक्के सूफ़ी विचारों के थे। उनपर 'थियासॉफ़ी' का भी बहुत प्रभाव पड़ा। इस कारण सब धर्मों के विशेष उद्देश्यों को वे समान आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इस्लाम के उद्देश्यों का अध्ययन कर जब उन्होंने सन् १९११ में 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' नामक पुस्तक लिखी, तब उनके साथी उन्हें लालचन्द के बजाए 'लाल मुहम्मद' सम्बोधित करने लगे। सूफ़ी मत का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया और दराज़न के सज्जादः नशीं (गद्दी नशीन) सख़ी कबूल मुहम्मद में बहुत श्रद्धा थी। बी०ए० में लालचन्दजी 'दर्शन' के विद्यार्थी थे। इस कारण उन्होंने अन्य धर्मों के उद्देश्यों का भी गहरा अध्ययन किया। थिअसॉफ़िकल सोसायटी के विशेष अन्तः केन्द्र 'फ्री मेसन्स' के भी वे सदस्य थे और श्री जेठमल के साथ मिलकर सिन्ध में थियासॉफ़ी का प्रचार करते रहे। इधर वेद-उपनिषदों का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। परन्तु वास्तविक जीवन में नित्य नियमपूर्वक स्नान कर जब तक "जपुजी साहब" और "सुखमनी" का पाठ नहीं करते थे, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे।

श्री लालचन्द, राजनीति और राष्ट्रीय क्षेत्र में महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे और उन पर सदा अमल करते रहे। इसके साथ ही मार्क्स और लेलिन के दर्शन से विशेष बिन्दुओं का चयन करके उनके साम्यवादी विचारों को भी सराहते थे। साहित्य के क्षेत्र में एक तरफ जहाँ सिन्ध के सूफ़ी सन्तों के कलाम का उन पर प्रभाव पड़ा वहीं दूसरी तरफ टैगोर के विचारों और कल्पना से भी अत्यन्त प्रभावित हुए। युरोपीय भाषाओं के साहित्य से अतिश्रेष्ठ रचनाओं का अध्ययन किया, जिनका भी प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से उनके व्यक्तित्व और लेखनी पर स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

लालचन्दजी के साथी और उनके विद्यार्थी जो उनके अनोखे व्यक्तित्व और लेखनी से बहुत प्रभावित हुए थे, उनमें से कतिपय के विचार इस प्रकार हैं :-

श्री गुलाम मुहम्मद "गिरामी" ने श्री लालचन्द को– "सिन्ध के प्रसिद्ध लेखक, परिपक्व कलाकार, श्लेष तथा सुन्दर भाषा लिखने वाले, परिहासपूर्ण अनुलेख के स्वामी और गहन चित्र प्रस्तुत करने वाली पद्धति के आविष्कारक" से सम्बोधित किया है। वे लिखते हैं कि, "आधुनिक सिन्धी साहित्य", अन्य अनेक हिन्दू सेवकों के साथ-साथ तीन हिन्दू सजनों को कभी भुला नहीं सकता– श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी, श्री भेरुमल महरचन्द आडवाणी और श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी। ये तीनों महानुभाव सिन्धी भाषा के लिए मानों 'अम्मा-बाबा' थे, जिन्होंने सिन्धी को पाला-पोसा और सजाया-संवारा। प्रत्येक, अपने स्थान पर अनुपम साहित्यकार का महत्त्व रखते हैं।

श्री लालचन्द एक ऋष्ट-पुष्ट, लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले, स्वस्थ और शक्तिशाली पुरुष थें। हंसमुख, विनोदी, खद्दरधारी, स्वतन्त्र विचारों वाले स्नेही व्यक्ति थे। वे सच्ची बात कहने वाले और मित्रता निभाने वाले व्यक्ति थे। एक अध्यापक के रूप में जीवन आरम्भ किया और एक शक्तिशाली साहित्यकार, सिन्धी कलाकार और सम्पादक के रूप में संसार से प्रस्थान किया।"[१४]

श्रीमती गुल मीनवाला, प्रेज़ीडंट थियासॉफ़िकल सोसायटी, कराची, ने श्री लालचन्द के फूल विसर्जित करने वाले कार्यक्रम के समय कहा– "स्वर्गवासी लालचन्दजी ताना-बाना दोनों ही रूप में सिन्धी थे। वे हिन्दू थे, पर उससे अधिक वे सिन्धी थे। थियासॉफिस्ट होने के कारण सब धर्मों के लिए उनके हृदय में आदर तथा प्रेम था। इस्लाम की विशेषताओं को प्रसारित करने के लिए अत्यन्त प्रयासरत रहे। स्वर्गवासी महानुभाव, हिन्दू-मुस्लिम एकता और मिलाप के बड़े पक्षधर थे। इस दिशा में उनकी सेवाएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं। वे साहित्य प्रेमी तथा सुलझे हुए लेखक और सम्पादक थे। उनके भाषण अत्यन्त प्रभावशाली थे। वे एक आदर्शी तथा योग्य व्यक्ति थे, स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। सिन्ध की भलाई और उन्नति की दिशा में उनके द्वारा की गई सेवाएं एक अनुपम उदाहरण हैं, और रहेंगी।"[१५]

डाक्टर मुहम्मद इब्राहीम 'ख़लील' जो मदरसा में लालचन्दजी के विद्यार्थी थे, उन्होंने कहा है– "स्वर्गवासी (लालचन्दजी) महानुभाव ने सिन्धी भाषा और सिन्धी साहित्य की राह में जो सेवाएं और परिश्रम किए हैं, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। उनकी लेखनी उत्तम तथा अद्वितीय थी। उनका अनुलेख उस शिखर पर पहुंच चुका था, जिसका उस स्थान पर पहुंचना कोई साधारण बात नहीं है।"[१६]

मिस्टर अब्दुल अज़ीज़ कंदारी भी श्री लालचन्द के पास मदरसे में पढ़े थे। सिन्धु

नदी में विसर्जित करने के लिए जब लालचन्दजी के 'फूल' हैदराबाद सिन्ध लाए गए थे, उस अवसर पर श्री कंदारी ने अपने स्वर्गीय अध्यापक को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए कहा– "वह १९१० का समय था, मैं मदरसे में विद्यार्थी था। मिस्टर जेठमल परसराम और मिस्टर लालचन्द अमरडिनोमल मदरसे में अध्यापक थे। ये दोनों, विद्यार्थियों में अत्यन्त प्रिय थे। मिस्टर लालचन्द ने जिस समय, पैग़म्बर सलअम पर सिन्धी में प्रथम पुस्तक लिखी थी वह समय अवश्य ही वैमंस्य तथा कट्टरता का समय था। पर, स्वर्गवासी में द्वेषता की गंध तक नहीं थी। अत्यन्त स्वतन्त्र स्वभाव के व्यक्ति थे। हिन्दुओं के लिए गंगा, जमना और गोदावरी शुद्ध व पवित्र नदियां मानी जाती हैं। परन्तु स्वर्गवासी ने गंगा और जमना से सिन्धु को अधिक पवित्र माना है। यह उदाहरण अद्वितीय है। अपने वतन से प्रेम की पराकाष्ठा है। अब तक सिन्ध के किसी भी हिन्दू चाहे मुसलमान ने ऐसा अनुपम उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है।"[१७]

श्री अली मुहम्मद राशदी ने श्री लालचन्द के विषय में लिखा है, " स्वर्गवासी श्री लालचन्द अमरडिनोमल कर्मनिष्ठ संसार के व्यक्ति थे; उनकी हस्तलिपि आकर्षक, भाषण गर्जदार, और आस्थाएं सन्तुलित थीं। ज्ञान में गहराई और विचारों में आवश्यकतानुसार कठोरता थी; ठेठ सिन्धी थे वे। देश से विस्थापित होकर बम्बई में प्राण त्यागे, तो वसीयत कर गए कि उनके 'फूल' सिन्ध के हैं; सिन्धु (नदी) के सुपुर्द किए जाएं, पराई घरोहर में पोषण न किया जाए, और हुआ भी ऐसा ही। उनकी जीवन भर की विद्वता और साहित्यिक व्यस्तताओं की धुरी उनकी यही भावना थी। अनुमानतः सिन्धी में वे साठ पुस्तकें लिख गए। यह निधि कभी न कम होगी और न ही लालचन्दजी कभी भुलाए जाएंगे।"[१८]

श्री मंघाराम मल्काणी ने श्री लालचन्द के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है, "लालचन्दजी को किसी अन्य की लेखनी फूटी आँख नहीं सुहाती थी...लालचन्दजी का स्वभाव ऐसा था कि किसी नए व्यक्ति से रुखा बर्ताव ही करते थे और मन की बात मुंह पर ही कह देते थे, जिस कारण उन्हें 'लालचन्द डकरु' (लालचन्द डंडा) कहकर सम्बोधित करते थे। और यह उपनाम वे गर्वपूर्वक स्वीकारते थे। पर जिस व्यक्ति से घनिष्ठता हो जाती थी उसके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे और कष्ट सहकर भी उसकी सहायता करते थे।"[१९]

प्रोफेसर लालसिंह अजवाणी ने लिखा है, "श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी के स्वर्गवास होने से नवीन सिन्धी गद्य का द्वितीय युग समाप्त हुआ...श्री लालचन्द की

निबन्धकारिता और नाटककारिता का, ऐसा कौन होगा जो प्रशंसा नहीं करेगा और 'अत्युत्तम' नहीं कहेगा ?... श्री लालचन्द स्वयं को 'डकरु' (डंडा) कहलवाते थे और किसी का भी पक्ष नहीं लेते थे, परन्तु वे स्वयं भी कभी बुरा नहीं मानते थे, यदि उनके विषय में अन्य कोई भी अपने विचार व्यक्त करता तो।"[२०]

अंग्रेजी में लिखे सिन्धी साहित्य के इतिहास में अजवाणीजी ने लिखा है, "लालचन्दजी निर्धनता की स्थिति में ही चल बसे, तब भी उन्होंने अन्तिम सांस तक अपने अटल और स्वतन्त्र स्वभाव को स्थापित रखा।" (सिन्धी अनुवाद पृ १९७)[२१]

श्रीमती सुन्दरी उत्तमचन्दाणी की श्री लालचन्द से अधिक घनिष्ठता नहीं थी। पर एक दो बार की भेंट से ही लालचन्दजी के व्यक्तित्व का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने अनुभव किया कि सिन्धी के ये वयोवृद्ध लेखक एक वृहत तने वाले वृक्ष के समान हैं और वह स्वयं 'एक छोटी सी डाली मात्र' हैं।[२२]

अध्याय तृतीय

रचनाएँ

श्री लालचन्द ने सिन्धी साहित्य की हर विधा पर लेखनी चलाई है। उनकी रचनाओं की संख्या सौ से भी अधिक है। वे अधिकांशतः भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त लालचन्द जी की कुछ ऐसी भी रचनाएं हैं, जो अभी तक प्रकाशित होकर प्रसारित नहीं हुई हैं, और हस्ताक्षर रूप में ही उनके उत्तराधिकारियों के पास सुरक्षित हैं । यह सम्भव नहीं है कि यहाँ पुस्तक की सीमित परिधि में उन सबका समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा सके। इस कारण उनकी प्रकाशित होकर प्रसारित हो चुकी रचनाओं में से श्रेष्ठ रचनाओं का यहाँ संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। अंत में उनके हस्ताक्षरों (पांडुलिपियों) का भी संक्षिप्त वर्णन किया जाएगा, जिससे कि प्रबुद्ध पाठक उनका ज्ञान प्राप्त कर सकें, और इन महान साहित्यकार की देन का समुचित अनुमान लगा सकें। लालचन्दजी की प्रकाशित रचनाओं में अधिकाँश रचनाएँ मौलिक हैं, जो साहित्य की विभिन्न विद्याओं में आ जाती हैं। उनके अतिरिक्त उन्होंने अन्य भाषाओं की कुछ श्रेष्ठतम कृतियाँ भी सिन्धी में अनुवाद कर हमारे समक्ष प्रस्तुत की हैं। सिन्धी साहित्य में उनका स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। इसलिए लालचन्दजी की समस्त रचनाओं को तीन भागों में विभाजित कर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है– (१) मौलिक रचनाएं (२) अनुवाद (३) अप्रकाशित रचनाएं ।

मौलिक रचनाएं

(१) उपन्यास

श्री लालचन्द के दो उपन्यास प्रकाशित हुए हैं – (अ) "चोथ जो चण्डु" (चौथ का चन्द्रमा) और (ब) "किशनीअ जो कष्टु" (किशनी का कष्ट)।

(अ) चोथ जो चण्डु

सिन्धी उपन्यास की प्रगति को देखने से ज्ञात होता है कि लालचन्दजी प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने बीसवीं शताब्दी में सिन्धी साहित्य को प्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास प्रदान किया । वह है 'चोथ जो चण्डु'। इससे पूर्व सिन्धी में जो मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखे गए हैं, वे तीन हैं। 'दल्लाराम' (१८८८) और 'ज़ीनत'

(१८९०) जो दोनों मिर्ज़ा कलीच बेग के लिखे हुए हैं, और तीसरा है 'अजीबु भेट' जो सन् १८९२ में श्री प्रीतमदास हुकूमतराय ने "हिकु निमाणो, सुधारे जो तालिबु" (एक नम्र, सुधार का इच्छुक) उपनाम से लिखकर प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया था। इस दृष्टि से 'चोथ जो चण्डु' उपन्यास का एक ऐतिहासिक महत्व भी है।

यह उपन्यास श्री लालचन्द ने तब लिखा था जब वे अभी बीस वर्ष के ही थे। सन् १९०३ में उन्होंने मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर अकेडमी में अध्यापन आरम्भ किया। उस स्कूल में अध्यापन के समय उन्होंने यह उपन्यास लिखा, जो प्रथम बार किसतों में 'सरस्वती' मासिक साहित्यिक पत्रिका में सन् १९०५ और १९०६ के अंकों में प्रकाशित हुआ था । यह पत्रिका भी अकेडमी की ओर से प्रकाशित होती थी और इस शताबदी के आरम्भ से अकेडमी स्कूल के प्रिन्सीपल ही पत्रिका के सम्पादक होते थे । लगता है लालचन्दजी को इस उपन्यास लिखने की प्रेरणा श्री प्रीतमदास के उपन्यास 'अजीबु भेंट' से मिली, जिसमें हैदराबाद नगर के हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति का चित्रण था और उनमें व्याप्त कुरीतियों का खुला वर्णन किया गया था । इससे पूर्व प्रकाशित मिर्ज़ा कलीच बेग का उपन्यास 'ज़ीनत' भी श्री लालचन्द के लिए एक अन्य उदाहरण था, जिसमें लेखक द्वारा सिन्ध के मुसलमानों के गृहस्थ-जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया था। 'चोथ जो चण्डु' उसके पश्चात पुस्तक रूप में सन् १९०९ में प्रकाशित हुआ । इसका पुस्तक रूप में द्वितीय संस्करण १९२१ में 'सिन्धी साहितु सोसायटी' की ओर से प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया गया था। वही संस्करण पुनः श्री जेठानन्द भावनदास लालवाणी ने, 'भारत जीवन साहित्य मण्डल' की ओर से 'जय हिन्द' मासिक पत्रिका के क्रम में अक्टूबर १९४७ में पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया। 'सरस्वती' पत्रिका में जब इस उपन्यास का किस्तों में प्रकाशन हुआ था, उसके रूप में अत्याधिक संशोधन कर लालचन्दजी ने १९०९ और १९२१ वाले संस्करण प्रकाशित करवाए थे । परन्तु उन्होंने उपन्यास के मूल आशय को वैसा ही रखा था ।

'चोथ जो चण्डु' उपन्यास का आशय क्या है ? इस सम्बन्ध में लेखक स्वयं उपन्यास के आरम्भ में समझाते हुए लिखते हैं :-

"पूरी पृथ्वी पर एसी कोई जाति नहीं है, जो संशयी न हो ।"

फिर हर जाति के हर व्यक्ति - पुरुष चाहे स्त्री को, वह पढ़ा-लिखा हो चाहे अनपढ़, को, कोई न कोई भ्रिम का भूत तो लगा हुआ ही है।

अब, अनपढ़ तो अल्पज्ञानी और असभ्य हैं; पर वे जो पढ़े-लिखे हैं, उनमें से भी बिरला ही कोई भ्रिम-अन्धविश्वास से छूटा हुआ होगा!

अन्तर केवल इतना है कि जो बेचारे अनपढ़ हैं वे छिपने का प्रयास नहीं करते।

उधर, खुले मस्तिष्क पश्चिमी लोग, जो कल तक अपनी सभ्यता के हठ में बावरे हो रहे थे, वे भी यदि कहीं देखेंगे कि खाना खाते समय तेरह जने साथ बैठे हैं, तो उनमें से एक जना स्वतः ही अविलम्ब खिसक जाएगा ।

कारण ?

उनके मन में यह अन्धविश्वास बैठा हुआ है कि तेरह जने एक साथ एक ही मेज़ पर खाना खाएंगे तो उनमें से एक तो अवश्य ही बारह माह के अन्दर मृत्यु का ग्रास हो जाएगा !

फिर किसी गोरे को कहिए कि सीढ़ी के नीचे से निकले, तो देखिए क्या करता है ![१]

एक सौ तीस पृष्ठ के इस उपन्यास का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है :-

गत शताब्दी में वर्ष १८९० के आस-पास हैदराबाद सिन्ध शहर में रहने वाले कुछ हिन्दू परिवारों की यह कहानी है। उपन्यास का नायक है मोती । वह अभी पन्द्रह वर्ष का ही था, अंग्रेज़ी कक्षा छः का विद्यार्थी था कि उसके पिता श्री रूपचन्द का देहान्त हो गया। नाना श्री रामचन्द अच्छे खाते-पीते व्यक्ति थे और ताऊ श्री मोहनलाल भी अपनी अच्छी आय वाले व्यक्ति थे। उन्होंने मोती पर हाथ रखा । उस समय नानी का अपना कोई लड़का नहीं था, इसलिए नाना-नानी यही कहते थे कि हमारा उत्तराधिकारी मोती ही है। मोती सबका ही लाडला था। मोती, मैट्रिक पास कर कालेज में पढ़ने के लिए बम्बई गया । वहां पर पूर्ण स्वतन्त्रता होने के कारण वह हाथ का खुला हो गया। वहां कर्ज़ पर कर्ज़ लेता रहा। हैदराबाद आता, तब भी पारिवारिक वैभव का ही प्रदर्शन करता था। ननिहाल की सम्पति मिलने का जो उसे विश्वास था। वह बम्बई में अभी इन्टर आर्ट्स में ही पढ़ रहा था कि उसे पत्र मिला कि वृद्धावस्था में नानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है। पत्र पढ़ते ही उस पर विपतियों के पहाड़ टूट पड़े। वह समझ गया कि अब ननिहाल की सम्पति का उत्तराधिकारी उत्पन्न हो गया है। पर इतना होने पर भी उसने अपना रोका हो, सो तो कभी किया नहीं ! हाथ में सूर्य था। बन-संवर कर चलने का अभ्यस्त था। अतः पांच-पच्चीस तो सदा खूटे ही रहते थे । जैसे-तैसे बी.ए. की परीक्षा देकर गांव वापस आया। अभी परीक्षा परिणाम घोषित ही नहीं हुआ था कि

उसकी सगाई कर दी गई। परिणाम घोषित हुआ तो उसके उत्तीर्ण होने की सूचना नहीं आई। तब उसने जाकर अध्यापन आरम्भ किया ।

मोती की मां आस लगाए बैठी थी कि वह बड़ा होते ही धन से उसका घर भर देगा। परन्तु उसके मन की मन में ही रही। आशाएं मिट्टी में मिल गईं। उस समय मोती की इच्छा अपनी सगाई की कदापि नहीं थी। पर अपने ताऊ श्री मोहनलाल के ज़ोर देने पर उसे सगाई के लिए 'हां' कहनी पड़ी। वह स्वयं दहेज के विरुद्ध था और भाषण देता रहता था। किन्तु घर के लोगों ने उसे तीन-चार हज़ार में नीलाम कर दिया। फिर, स्थान भी ऐसे पर जहां वह कदापि नहीं चाहता था। कन्या पक्ष वालों ने शीघ्र ही विवाह देना चाहा । पर मोती की मां सर्वथा 'ना' पर ही अड़ी रही, कि यह श्राद्ध पक्ष है ! बड़ा बेटा भादवे में पराणाया तो तीन माह के अन्दर ही चल बसा ।

मोती का एक घनिष्ट मित्र था हीरा, श्री प्रतापराय का पुत्र। आयु में मोती से दो वर्ष छोटा ही था। लेखक ने उपन्यास की कहानी का आरम्भ उनकी हृदयस्पर्शी बातों से किया है। मोती की सगाई हो चुकी थी। एक दिन दोनों मित्र गिदू (स्थान) की तरफ सिन्धु (नदी) के किनारे सैर करने गए। संध्या का समय था। अचानक मोती की दृष्टि आसमान की ओर उठ गई और हंसिये के आकार के चन्द्रमा पर जा टिकी । उस दिन भादवे की चौथ थी, अस्तु । दोनों मित्र बातें करते हुए रात के दस बजे तक वापस घर पहुँचे । मोती, रात का खाना खाकर सोने चला गया । रात को उसने एक भयानक स्वप्न देखा कि उसके पंख निकल आए हैं और वह एक गठीले तथा गदराए शरीर वाली यौवना को अपनी कांख में दबाए, हवा में उड़ रहा है। अचानक नीचे से किसी ने उसे तीर मारा जो उसके अस्तित्व के पार निकल गया । वह कोमलांगना हाथों से छूट गई, वह स्वयं भी धड़ाम से खड़ी पहाड़ी के ऊंचे शिखर पर आ गिरा । जब कुछ सचेत हुआ तो फिर ऐसी वेगवान आंधी चलने लगी कि मोती स्वयं को सम्भाल नहीं सका । ऊंचाई से नीचे की तरफ़ लुढ़कता रहा। किन्तु बीच में ही किसी ने उसे रोक लिया। यहां मोती की आंख खुल गई और चौंक्कर उठ बैठा। स्वप्न का मन पर ऐसा प्रभाव हुआ कि सवेरा होते ही उसे तेज़ बुखार ने आ घेरा। कई दिनों तक स्वप्न का भय मन पर छाया रहा ।

उन्हीं दिनों किन्ही कान भरने वालों तथा दो घरों में आग लगाने वालों ने जाकर श्री मोहनलाल के कान भरे कि आपकी भौजाई और भतीजा शहर में आपको बदनाम कर रहे हैं, कि आप, मोती की सगाई में मिली राशि दबाए बैठे हैं। यह भ्रामक प्रचार

घर की फूट का कारण बना। मोती की मां कलह बढ़ती देखकर अन्ततः बेटे को साथ लेकर, ज्येष्ठ से अलग होकर किसी अन्य मोहल्ले में घर लेकर रहने लगी। इस पर मोती के मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि न जाने चौथ का चन्द्रमा देखने का यह परिणाम है जो घर में फूट पड़ गई है।

मोती का स्वभाव ऐसा था कि वह किसी से मेलजोल की बात तो जानता ही नहीं था। किसी में कोई बुराई देखकर शान्त रह जाए, सो तो वह कर ही नहीं सकता था। अगले को मुंह पर ही सुना देता था। इसलिए एक बुरे लड़के पम्मे की मोती से कभी पटती ही नहीं थी। पम्मे को भी इस बात पर क्रोध था कि मोती, हीरे को भी उससे मित्रता करने पर रोकता था। एक बार मोती अस्वस्थ हो गया तो पम्मे को अवसर मिल गया। उसने हीरे को अपने चंगुल में ऐसा फंसाया, कि हीरा, मोती के अस्वस्थ होने की बात सुनकर भी उससे मिलने तक नहीं गया। हीरा इन्टर की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो बी. ए. के लिए कालेज में प्रवेश लेने के लिए कराची जाने की तैयारी करने लगा। उस समय वह मोती से विदा लेकर कराची के लिए रवाना हुआ । पम्मा भी कराची में था। वह समय समय पर हीरे के मन में संशय उत्पन्न कर मोती के प्रति घृणा उत्पन्न करने में सफल हो गया।

हीरे के रूष्टता भरे पत्र जब मोती को मिले तो उसके मन में फिर उलटे-सीधे विचार उत्पन्न हुए । मोती ने हीरे को बहुत समझाया, पर उलटे घड़े पानी! अन्ततः घनिष्ट मित्र ने उससे मित्रता तोड़ ली इस पर मोती को संदेह हुआ कि इसका कारण भी चौथ के चन्द्रमा के दर्शन ही हैं। अब मोती पर विपतियों पर विपतियां गहराने लगीं। श्री रामचन्द (मोती के नाना) ने अपने बेटे होतू का, चन्द्रदर्शन के दिन 'उडेरे लाल' (स्थान) जाकर उपनयन संस्कार करने का कार्यक्रम बनाया । सब सम्बन्धियों-प्रियजनों को आमन्त्रित किया। पर दूसरे ही दिन उन्हें ठंड लग जाने के कारण, मस्तिष्क में शीत बैठ गया, बस, उसी दिन ही उनकी मृत्यु हो गई । तब घर वालों को याद आया कि, जब होतु जन्मा था, तब उसके ऊपरी जबड़े में दो दाँत थे। इसलिए अभागे छोरे ने आखिर पिता की जान ले ली। दूसरे, काली-कलूटी मोती की मंगेतर पर भी अभागेपन की बात आ गई कि अभागी छोरी के ग्रह ऐसे भारी हैं कि सगाई होते ही मोती के नाना को लील गई, सो विवाहोपरान्त न जाने उसके ग्रह कैसी-कैसी विपदाएं लाएंगे ! मोती के नाना के देहान्त पश्चात लेनदार भी मोती के पीछे पड़ गए। उन्होंने अपने

कर्ज़े की राशि वापस लेने के लिए दिन-रात एक कर दिया। मोती का उधार खाता भी बन्द कर दिया ।

कालेज में छुट्टियां हो गईं। हीरा, छुट्टियों में हैदराबाद आया तो मोती पर आई विपदाओं की बातें कान पर पड़ीं । उसे पिछले दिनों का स्मरण हो आया जब वह मोती से एक पल के लिए भी अलग नहीं होता था। ये बातें सोचते-सोचते हिंडोले में लेटे-लेटे ही उसकी आंख लग गई। उसने एक भयानक स्वप्न देखा कि वह एक सिरा टूटे हुए डूंगर की ढलान पर मध्य में अकेला ही अकेला खड़ा था नीचे प्रचण्ड वेग से बहती नदी की लहरों की कर्कश आवाजें कानों पर पड़ रही थीं। इतने में ही उसने अनुभव किया कि उसकी बाहें स्वतः ही सीधी होकर ऊपर को उठीं और उनपर एक लम्बा-चौड़ा पुरुष न जाने कहां से आ गिरा । बस, वहीं उसके साथ ही वह स्वयं भी नदी में जा गिरा। और लहरों में बहता हुआ गहरे पानी की तरफ बढ़ता गया। यहां पर हीरे की आंख, मारे भय के अचानक खुल गई ।

उधर मोती की ससुराल वालों ने विवाह लेने की जल्दी मचादी तो उसने विचार किया कि अध्यापन छोड़कर बम्बई चला जाऊं और जाकर बी. ए. उत्तीर्ण करूं। दूसरी तरफ़ हीरे के विचारों में भी परिवर्तन आया कि बेकार ही अपने घनिष्ठ मित्र से अनबन कर उसका हृदय दुखाया। बस, फिर तो दोनों मित्र, तीन चार अन्य साथियों सहित आगे की पढ़ाई के लिए 'स्टीमर' द्वारा बम्बई चले गए। वहां, सब का समय आनन्द से बीत रहा था कि हीरे को एक दिन अपने पिता का पत्र मिला कि मोती के साथ वह किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे। (सम्भव है उन्होंने पम्मे के भड़काने पर ऐसा लिखा हो) हीरा बड़ी उधेड़बुन में पड़ गया। मोती से सम्बन्ध नहीं रखे तो भी अच्छा नहीं, और यदि पिता की आज्ञा नहीं मानता तो भी उचित नहीं। इस प्रकार दोनों में फिर से दूरी बढ़ने लगी।

दूसरी तरफ मोती अभी बम्बई में ही था कि पीछे से उसके नाना के भाई और साझेदार स्व० श्री रामचन्द का सर्वस्व लूटकर ले गए। मोती की नानी का बारह मासी सोग उतरा तो जाकर अपने देवरों का आश्रय लिया। वहीं झाडू-बरतन का काम भी उसकी देवरानियां उसी से करवाने लगीं। अवकाश में मोती हैदराबाद आया तो नानी और होतू की हालत देखकर हृदय विदीर्ण हो गया। इस पर नाना के भाई श्री बूलचन्द वकील से तू तू - मैं मैं भी हो गई। अन्त में अपनी नानी और होतू को लाकर अपने साथ रखा ।

इसके बाद मोती ने बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, और वापस आकर फिर उसी स्कूल में अध्यापक बन गया। तीन वर्ष बीत गए, हीरा अपने पिता के आदेश के कारण मोती से नहीं मिला था । मोती के भी शायद चल रही थी साढ़े सात वर्षीय दशा, सो वह अधिक कठिनाईयों से घिर गया। उसने होतू की तरफ से नाना के भाईयों पर दीवानी मुकदमा कर दिया कि वे लोग अपनी भौजाई तथा अल्पायु भतीजे की सम्पति हड़प गए हैं। इसका बदला लेने के लिए नाना के भाई श्री बूलचन्द वकील ने अपना जाल फैलाया। होतू का अपहरण कर उसे कहीं छिपा दिया और पुलिस में रपट दर्ज करवा दी कि मोती ने अपने ननिहाल की सम्पति हथियाने के लिए उसके अल्पायु उत्तराधिकारी होतू का अपहरण कर उसे कहीं छिपा रखा है। सम्भव है कि उसके (होतू के) शत्रुओं ने उसे ख़त्म कर दिया हो !

शहर में इस बात पर शोर मच गया। जिस दिन मोती, ननिहाल की सम्पति वाला दीवानी केस जीत गया, ठीक उसी दिन उसे फौजदारी अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। केस चला। गवाहियां हुईं, जो सब मोती के विरुद्ध थीं। निचली कोर्ट ने मोती को दोषी ठहराते हुए सज़ा सुना दी। यह केस हाई-कोर्ट में अपील के लिए प्रस्तुत हुआ। उन्हीं दिनों हीरा बम्बई से हैदराबाद आया था। मोती पर हत्या के अपराध में मुकदमे की बात सुनकर अवाक् रह गया। उसने कहा कि मोती मरते मर जाएगा पर ऐसा बुरा काम कभी नहीं करेगा । मोती को यह विश्वास था कि यह जो झूठा कलंक लगा है, उसका कारण भी निसन्देह चौथ के चन्द्रमा के दर्शन हैं। अनेकानेक विपतियां भी इसी कारण से आ रही हैं।

मोती अपने विद्यार्थियों में अत्यन्त प्रिय था। विद्यार्थियों को विश्वास था कि अवश्य ही हमारे अध्यापकजी को उनके शत्रुओं ने झूठे अपराध में फंसाया है। उधर हीरे ने भी अपने मित्र को बुरी तरह से फंसा हुआ देखकर उसे बचाने का निश्चय कर लिया। अतः हीरा और मोती के विद्यार्थियों ने गुप्त रूप से विचार-विमर्श कर एक योजना तैयार की। एक रात वे लोग जेल के पहरेदारों को मूर्छा की दवाई सुंघाकर, मोती को भेष बदलवाकर जेल से निकालकर भगा ले गए। दूसरे दिन सवेरे जेलर साहब, कर्मचारियों और नगरवासियों को मोती के जेल से भाग जाने की जानकारी मिली। पर कोई भी यह पहेली नहीं बुझा सका कि मोती आखिर भागा किस विधि से ? मोती और हीरा दोनों ने जो स्वप्न देखा था वह सच हुआ । हीरा ने तब अनुभव किया कि स्वप्न में जो लम्बा-चौड़ा व्यक्ति उसकी बाहों में आ गिर था, वह और कोई नहीं, पर उसका मित्र मोती था।

इस प्रकार, इस उपन्यास की पूरी नींव चौथ के चन्द्रमा के दर्शन की घटना पर आधारित है। भागवत पुराण में भी इस प्रकार की एक कथा का वर्णन है कि श्री कृष्ण भगवान ने भी भादवे की चौथ को चन्द्रमा के दर्शन किए थे, तो उन पर मणि चुराने का झूठा कलंक लगा था। आज तक भी कई पढ़े-लिखे लोग इस बात पर विश्वास करते हैं। यूं कहना चाहिए कि यह एक 'लोक विशवास' बन चुका है, जिसका भय कई पढ़े-लिखे चाहे अनपढ़ लोगों के मन पर छाया हुआ है। मोती भी इस अंधविश्वास का शिकार होता है। इसलिए जीवन में जो भी विपत्तियां उस पर टूटती हैं, उनका कारण वह चन्द्रमा के दर्शन की घटना को मानता है।

इस उपन्यास का दूसरा ध्येय है हिन्दू समाज के एक वर्ग का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना। लालचन्द जी स्वयं उपन्यास के आरम्भ में लिखते हैं, "ऐसा सिन्धी उपन्यास, जिसमें हैदराबाद निवासियों के गृहस्थ जीवन का वर्णन आया हो, वह आरम्भ काल में हमारी ही बिरादरी के 'हिक निमाणे, सुधारे जे तालिब' ने लिखा था। यह उपन्यास 'अजीबु भेट' के नाम से जाना जाता है। उसके पश्चात दूसरा यह ही उपन्यास है जिसमें हैदराबाद के वर्ग विशेष (Racial) के जीवन को चित्रित किया गया है।"[२] लालचन्दजी स्वयं भी हैदराबाद के निवासी थे। इस कारण उन्होंने वहां के हिन्दू समाज के जो पक्ष प्रस्तुत किए हैं, वे उनके व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं ।

इस उपन्यास में चौथ के चन्द्रमा को देखने के अतिरिक्त लेखक ने अन्य कई भ्रमों-संशयों, टोनों-टोटकों और लोक-विश्वासों का वर्णन किया है, जो आज भी अनेकानेक लोगों के मन में घर किए हुए हैं, जैसे-भाद्रपद में, धनारक में (जब तारा डूबा हुआ हो) विवाह का कारज नहीं किया जाता है। मोती के बड़े भाई का विवाह इसी माह में हुआ था, तो तीन माह के भीतर ही वह चल बसा, बच्चे के जनमते ही यदि उसके ऊपरी जबड़े में दो दांत निकले हुए हों तो यह अपशकुन माना जाता है और दुर्भाग्य का चिह्न है। ऐसा बालक परिवार के किसी न किसी व्यक्ति का भक्ष लेता है। परन्तु यदि उसके जन्म के तुरन्त बाद जंगल में जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहा जाए "आकाश धरती पर, धरती आकाश पर ? पहले निचले, पहले ऊपर के?" तो फिर उसका कुप्रभाव हट जाएगा; बिल्ली पानी में मुंह धोए, या छत पर कौआ आकर 'कॉव-कॉव' करे तो जल्दी ही कोई अतिथि आएगा या किसी का पत्र आएगा किसी से मिलने के लिए कोई घर से निकले और उस समय गधा रेंके तो यह अपशकुन है; बालक का दांत टूट जाए, किसी पूरे दिनों वाली स्त्री के घर की छत पर वह दांत रुई में लपेटकर फेंक

दिया जाए तो उसे पुत्र उत्पन्न होगा; पूर्व जन्म के कर्मों के कारण या साढे सात वर्षीय दशा के कारण इनसान विपत्तियों से घिर जाता है; घोड़ी दिन में ब्याए, धोबी की भट्ठी ढह जाए, चन्द्रमा के चौगिर्द रात के समय घेरा बन जाए तो नगर पर कोई न कोई विपत्ति अवश्य आएगी ।

लेखक ने कुछ हिन्दू रीति-रिवाजों का भी वास्तविक वर्णन किया हैः- मोती के नाना अन्तिम सांसें ले रहे थे कि घर वालों ने शीघ्रता से जो भी हाथ लगा, उसे स्पर्श करवाकर उनसे धर्म कर्म करवाया, उन्हें गंगाजल से स्नान करवाया फिर झट से गाय के गोबर से धरती लीप कर और तिल-जौ-छिड़का कर उस पर उन्हें लिटा दिया, सिर की तरफ तिल-जौ की ढेरी बनाकर उस पर घी का दीपक जलाकर रखा और दाहिनी तरफ सरंकडे का तिनका नापकर रख दिया; फिर सूर्यास्त से पूर्व ही अर्थी निकली और सूर्य के साक्षित्व में अग्नि दी गई। तीसरे माह का सोग उतरते समय, लालचन्दजी ने स्त्रियों के विलाप करने के ढंग का इस प्रकार वर्णन किया है :-

"उस समय की रीति-रिवाजों के अनुसार, पूर्वाह्न में ही समधनों के लिए घुमावदार चिलमें भरकर, और नसवार (सुंघनी) की डिब्बियां भरकर रख दी थीं।

समधनें आईं और मुँह ढक लिया।

प्रथम विलाप केले की मां (श्री रामचंन्द की बड़ी बहन) ने किया जो बड़ी थी; कि

"यारु तमाशे निकतो, लोडे लुंगीअ ढार,
कहिड़ीअ डाइण ढूसियो, ब़ीड़ो डेई वात"

इस पर अन्य सब स्त्रियों ने मिलकर इसे दोहराया, और अन्त में यूं भी कहा-चढ़्यो शेरु शिकार !

यूं क्रमवार, मोती के ननिहाल से आई एक-एक जनी विलाप करती रही और अन्य स्त्रियां वैसा ही दोहराकर अन्त में कहतीं-चढ़्यो शेरु शिकार !

मोती की ननिहाल से आई स्त्रियों ने छाती पीट-पीटकर छातियों पर नील डाल दिए और रोयीं इतना कि उनका गला बैठ गया ।

चादर बदलते (एक रिवाज) समय भी स्त्रियों ने अत्यन्त खींचातानी की अन्त में जैसे-तैसे मानीं ।"[३]

श्री लालचन्द ने मोती की नानी द्वारा पुत्र पाने के लिए की गई मन्नतों के ढंग का वर्णन देखिए किस प्रकार किया है-

"इसके लिए बहुत ही जोग-साधनाएं कीं और भेस पहने, पीर-फक्रीर पूछे और

दान-पुण्य किए, दरिया शाह के चालीसा रखे (सिन्धु (नदी) पूजन हेतु चालीस दिन का पूज पाठ आदि) और आखा-बहराना निकलवाया (चालीस दिनों बाद पूजन), शुक्ल पक्ष के रविवारों पर कुंवारी कन्याओं को भोजन करवाया और आरती की, सत्य नारायण की कथाएं करवाई तथा ग्रह शान्ति के लिए पूजन करवाए, जाप करवाए और मन्नतें मानी; सात सुहागिनों, नीले व्याह वालों,* धोबी, निम्नवर्ग की स्त्री आदि से पैसे मांगकर 'जीअंदरा' (एक प्रकार का नग) खरीदा, और उचित समय पर फुलेली (सिन्धु नदी की शाखा) पर जाकर मछुआरों से डूबी हुई नाव का लोहा हाथ कर, और घड़ाई के पैसे भी मन्दिर से लेकर, गढ़वाकर पहना; और फिर पूरे समय (नौ माह पूर्ण होने पर) पर बाहों में नए चूड़े (हाथी दांत के चूड़े) पहने।"(४)

मोती की मां, मोती की उन्नति के लिए ग्रहों की पीड़ा टालने के लिए देखिए किस प्रकार प्रार्थना करती है।

"उसकी मां सुनती थी कि उसका अन्त कल्याणकारी है, तो सांत्वना आ जाती थी और संध्या-सवेरे ईश्वर से अपना पल्लू पसार यही मांगती थी-सांवल शाह ! उच्च दृष्टि और बलिष्ट बाहें देना उसे, सदा सुखी जीवन प्रदान करना। उसे कर्ज़ मर्ज़ से दूर रखना। अपनी शक्ति देना उसे। खेत-हांडी में प्रचुरता प्रदान करना, बैर-बैरी दूर करना, उसकी रक्षा करना, झूलण, (सिन्धियों के ईष्ट देवता झूलेलाल) सदा लाज रखना।" (५)

उन्नीसवीं शत्ती के अन्तिम दौर और बीसवीं शत्ती के आरम्भिक काल में हैदराबाद में जो सामाजिक स्थिति थी अथवा जो जातीय घटनाएं हुई थीं उनमें से भी कुछ वृतांत इस उपन्यास में मिलते हैं :-

"उन दिनों हैदराबाद में जातीय सुधारों (Racial reforms) के लिए अत्याधिक प्रयास चल रहे थे।

कुछ महानुभावों ने मिलकर 'सुधार सभा' स्थापित की थी।

नए विचारों वाले कुछ अंग्रेज़ीयत पसन्द युवकों के हृदयों पर अपने रीति-रिवाजों, जातीय चाहे धार्मिक के सम्बन्ध में इतना उग्र प्रभाव जम चुका था, कि वे समझ रहे थे कि जो कुछ भी है वह गोरों के पास है। विद्या चाहे विद्वता में, धर्म चाहे कर्म में, हिन्दूपन सर्वथा पशुता और अज्ञानता है, देवगुण तथा विद्वता सब ईसाई धर्म के अनुयायियों में ही ठसाठस भरी है।"(६)

दहेज का मर्ज़ हिन्दुओं में सर्वव्यापक दिखाई देता था। समाज पर न केवल

---

* नीले व्याह वालों = जिसमें वर-वधु अपने माता-पिता की इकलोती सन्तान होती है

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव था, अपितु कुछ हिन्दू, मुसलमानों के प्रभाव में आकर, जाकर दीन के घोड़े पर चढ़े, तो कुछ ने जाकर बपतिस्मा धारण की। स्त्री-शिक्षा का प्रचार अधिक होने लगा, क्योंकि समाज सुधारकों का विचार था कि इससे न केवल दहेज प्रथा टल जाएगी, अपितु अन्य जातीय, कुरीतियों और भ्रम-संशयों का भी अंत होगा।

'चोथ जो चण्डु' (चौथ का चन्द्रमा) उपन्यास उस समय के अन्य उपन्यासों से निराला है। साधारणतया उपन्यासकार अपनी रचनाओं में आदर्श तथा दुष्ट पात्रों का सृजन करते हैं जिनमें कष्ट तथा पीड़ाओं के पश्चात अन्ततः आदर्श पात्रों की विजय दर्शायी जाती है और दुष्ट पात्रों की पराजय। आदर्श पात्र अंत में सुख-आनन्द भोगते हैं तो दुष्ट पात्र अपने भ्रष्ट-आचरण का दंड भुगतते हैं। परन्तु इस उपन्यास में बात भिन्न है। उपन्यास का नायक मोती, आरम्भ में चाहे लालची, हाथ का खुला और अनुचित व्यवहार के कारण ऋणों के बोझ से दब जाता है, पर फिर समय की ठोकरें खाकर वह गम्भीर और अटल विचारवान बन जाता है। लेखक इस नायक को किसी आदर्श या उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। बल्कि, दिखाते हैं कि वह सत्य की राह चलते, सद व्यवहार करते हुए भी अन्त में जाकर कारावास का दण्ड भोगता है। दूसरी तरफ बूलंचन्द वकील जो भ्रष्ट आचरण कर अपनी विधवा भौजाई और अल्प व्यस्क भतीजे को दुखी करता है, वह अन्त में मोती को जेल की हवा खिलाने में सफल हो जाता है। उसी प्रकार मोती के ताऊ श्री मोहनलाल और पम्मा भी अपने भ्रष्ट आचरणों का कोई दण्ड नहीं भोगते। इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में दुष्ट लोगों की विजय होती दिखाकर, जीवन की इन कटु वास्तविकताओं की तरफ संकेत किया है।

उपन्यास के कथानक की दृष्टि से लेखक स्वप्नों के माध्यम से भविष्य में घटने वाली घटनाओं की तरफ पूर्व में ही संकेत कर देते हैं कि मोती की मित्रता हीरा से टूटेगी, पर हीरा अन्त में उसकी सहायता के लिए आकर पुनः साथ निभाएगा। इसी प्रकार, भादवे की चौथ का चन्द्रमा देखना अपशकुन है और देखने वाला कष्टों से घिर जाएगा, उस पर झूठा कलंक लगेगा, इन बातों की ओर संकेत कर लेखक मानों अप्रत्यक्ष रूप से पूर्व में ही चेता देता हैं कि आगे चलकर मोती पर कैसी विपत्तियां आने वाली हैं। पात्र सृजनता में लेखक प्रायः स्वयं पात्रों अथवा घटनाओं की व्याख्या करते चलते हैं। दूसरी तरफ, घटनाओं या संवादों के माध्यम से पात्रों के स्वभाव पर प्रकाश डालने

की राह लेखक ने कम ली है। हर एक अध्याय में क्या होना है, उसकी ओर भी संकेत, अध्याय के आरम्भ में शेर (कविता), बेत या उदाहरण देकर, कर देते हैं। लेखक ने स्थान-स्थान पर स्वरचित शेर भी दिए हैं। विशेष रूप से मोती और हीरा के पत्रों में लालचन्दजी ने अपनी काव्य सृजनशीलता का प्रचुरता से प्रदर्शन किया है।

इस उपन्यास की विशेषता है दृश्य चित्रण और वृतान्त वर्णन। श्री लालचन्द ने अति सुन्दर ढंग से कई स्थानों पर हैदराबाद के सीमा क्षेत्र में सिन्धु नदी के किनारे के आस-पास के दृश्य चित्रित किए हैं। इनमें वह कहीं कहीं पर इतने लम्बे वर्णन करते हैं कि उपन्यास के कथानक की गति ही अवरुद्ध हो जाती है। इस उपन्यास की दूसरी विशेषता है लालचन्दजी की मुहावरेदार भाषा और अद्भुत अनुलेख। पात्रों के स्वभाव तथा व्यवहार अनुसार लेखक ने भाषा प्रयुक्त की है। स्त्रियों के वार्तालप का ढंग, उच्चारण में अशुद्धियां और स्वाभाविक संवाद प्रस्तुत करने में लालचन्दजी को आश्चर्यजनक दक्षता प्राप्त है। यहां एक दो उदाहरण दिए जा रहे हैं :-

प्राकृतिक दृश्यों के चित्र :

"घर लौटते समय, सूर्य ने अपनी प्रकाशवान सवारी का चिह्न क्षितिज की लालिमा के रूप में परिवर्तित कर लिया था।

हमारे नई नई सगाई हुए युवक को अतिश्वेत वस्त्र धारण किए हुए थे, और अपने प्रिय मित्र के साथ बड़े दरिया (नदी) की ओर जा रहा था।

इसी रास्ते की दोनों ओर अनेक सुन्दर नीम और घने हरे बबूल, भव्य बड़ तथा सुन्दर पीपल, कहीं कहीं पर सीधे सरकण्डे भी-एक दूसरे के अति निकट खड़े हैं, जिनके झुरमुट एक-दूजे में गुंथे हुए हैं और एक भव्य धत्ते का रूप धारण किए हुए हैं। इन वृक्षों में स्वाभाविक सुगन्ध होती है। उस दिन संध्या समय शीतल बयार चल रही थी। सो वहां से गुज़रते समय दिन भर की थकान ही विस्मृत हो जाती है।"(७)

हीरे के भयानक स्वप्न का जो दृश्य लेखक ने चित्रित किया है उसमें से यह दृष्टांत देखिए :

"चारों ओर अत्यन्त हरियाली ही हरियाली, अनेक भारी बड़, और घुमावदार राहों में झाड़-झंखार भी अनेक, किन्तु स्वर-चमगादड़ों की घूं-घूं और डेडरों की टर्र-टर्र के अतिरिक्त कानों पर कुछ पड़ता ही नहीं! वहां अचानक ही अचानक तेज आंधी चलने लगी है; और इसी कारण पेड़ों के पत्तों की खड़खड़ाहट ऐसी भयानक लगने लगी है मानो केहरी सिंह गरज रहा हो । दूर नदी में भयावह उफ़ान, तीव्र बहाव के कारण

भँवर से उठने वाला कर्कश स्वर कानों में पड़ रहा है, जो सुनते ही रोंगटे खड़े हो जावें। जंगली जानवर दहाड़ते हुए नदी की ओर से लौट रहे हैं, और सब बेड़े बहाव में बहते जा रहे हैं ! यह दृश्य देखकर हृदय भयभीत हो रहा है और मन में सिहरन सी उत्पन्न हो रही है।"[८] (यहां लेखक पर शाह साहब के शेर (कविता) का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है)

मोती की माँ और जेठा की माँ के संवाद का यह दृश्य देखिये :

"भाभी, मोती की सगाई कीजिए न, मेरी तो दिन-रात की नींद उड़ गई है। लेनदार तंग कर रहे हैं, सिर ऊंचा कर चल नहीं सकते। तुरन्त मेरे बेटे का सम्बन्ध करा दिया। मेरी, दूसरी कोई सन्तान तो थी नहीं। बेटा बढ़ा कि सोना बढ़ा। बेटी तो थी नहीं जो बड़ी हो रही थी तो भार लग रही थी। ऐसा जानती कि नाव चढ़ाकर तख़्ता निकाल देंगे, और पाई-पाई को मोहताज बना देंगे, तो बेटे की ससुराल से मिले रुपये ही उन्हें क्यों देती, कि लो मजे करो! बेटे की ससुराल से कटोरे * के तीन हजार (हज़ार) मिले जो उसी समय थैली ही उन्हें दे दी। फिर जैसे तैसे हजार (एक हज़ार) देकर जान छुड़ाई, तो भी उनसे पूछो, भला मैंने जबान (ज़ुबान) भी खोली: अब वालिस (वारिस) भी खुद बने हैं तो मालिक भी खुद। हम तो थे ऐरे गैरे !

जेठा की मां—यूं शिथिल क्यों पड़ा है? (मस्तक पर हाथ रखकर) शरीर अलील है क्या ?

मोती की मां—बहना, पूछो मत। दोपहर होती है तो शरीर भट्ठी सा जलने लगता है। जी-जहान की सुधबुध नहीं रहती, बेसुध ही बेसुध पड़ा है। सब भाग (भाग्य) की बात है, अपनों से नाता टूट गया। न जाने किसका बुरा वचन (कोसना) फल गया!

जेठा की मां – सखी, मन क्यों छोटा किया है ? ईश्वर सब भली करेंगे। इस असहाय स्थिति से भी देखना वह कैसे उबारता है। अरे, जो पेट में छोड़ गए उनके भी पल निपकर योग्य बन गए। तुम्हारा तो, ईश्वर उसे चिरायु दे, सुपात्र है, अब जवान हुआ कि हुआ। फिर तुम्हें भला क्या भूख पड़ी है?"[९]

कथानक की योजना के विचार से 'चोथ जो चण्डु' अपूर्ण उपन्यास है। मोती के विधार्थी और हीरा, मोती को जेल से भगाकर कहां ले गए? होतू का, अन्त में पता लगा या नहीं ? यदि श्री बूलचन्द वकील ने होतू का अपहरण किया था तो अन्त में

---

* रीति अनुसार सगाई के समय चांदी के कटोरे में डालकर समधी को भेंट करना।

उसे प्रकट किया या नहीं? मोती की मां और मोती की नानी के मन में भी यह संशय उत्पन्न हुआ था कि सम्भव है, मोती ने सम्पति की लालच में होतू का अपहरण कर लिया हो या हत्या कर दी हो । यह संशय अन्त में असत्य प्रमाणित हुआ या नहीं ? आखिर मोती पर लगा झूठा कलंक कैसे हटा? जेल से भाग जाने के अपराध से वह कैसे मुक्त हुआ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर लेखक को देने हैं । अब तक उन्होंने केवल इस ध्येय में पूर्ण सफलता प्राप्त की है कि भाद्रपद में चौथ का चन्द्रमा देखने पर झूठा कलंक लगता है। इस कारण व्यक्ति विपत्तियों से घिर जाता है। इस उपन्यास की योजना अपूर्ण है, इसका ज्ञान लेखक को भी है। इसलिए वे उपन्यास के आरम्भ में लिखते हैं, "उपन्यास के द्वितीय भाग में, जिसकी योजना अभी कल्पना संसार से निकलकर, शब्दों का जामा पहनकर प्रकट नहीं हुई है, जीवन ने साथ दिया तो उसमें, देश में जो इतनी बड़ी सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल हुई है, उसके कुछ चौंकाने वाले वर्णन लेखबद्ध किए जाएंगे।" ये शब्द लालचन्द जी ने ११ अप्रेल १९४७ को लिखे हैं । बस, इसी वर्ष बटवारा हुआ। वर्ष भर बाद लेखक विस्थापित होकर, बम्बई आकर रहे। वहां जीवन संघर्ष में उन्हें अपनी उस अधूरी रचना को पूरा करने का अवसर अन्तिम समय तक नहीं मिला।

(ब) किशनीअ जो कष्टु (किशनी का कष्ट)

श्री लालचन्द की पारिभाषिक भाषा कई लोगों को कठिन प्रतीत हुई तो उसके पश्चात उन्होंने अपने लेख को अत्याधिक सरल बनाने का प्रयास किया। इसका सुन्दर उदाहरण उनका लिखा लघु उपन्यास 'किशनीअ जो कष्टु' है जो उन्होंने १९१७ में प्रकाशित करवाया था। इसमें लालचन्दजी ने अपना वास्तविक नाम प्रकट नहीं किया। पर उन्होंने लेखक का नाम "आवतराय रूपचन्द मनचन्दिया" लिखा है। भूमिका और लेख से स्पष्ट है कि यह रचना श्री लालचन्द द्वारा सृजित है।

नाम बदलने का कारण शायद यह रहा हो कि पाठकों के मन पर यह भय बैठा हुआ है कि लालचन्द जी द्वारा प्रयुक्त भाषा कठिन है। इस कारण लेखक का कोई अन्य नाम पढ़ेंगे तो उनके मन पर वह प्रभाव नहीं होगा और वे सरलता से उपन्यास का आनन्द उठा सकेंगे। वास्तव में देखा जाए तो सचमुच इस रचना में लालचन्द जी ने अपने लेख का ढंग बदलकर उसे बहुत सरल बनाया है। 'किशनीअ जो कष्टु' उपन्यास की योजना भी सीधी-सादी है और सरलता से आगे बढ़ती है।

'किशनीअ जो कष्टु' साधारण सा सामाजिक उपन्यास है। इसमें आदर्श पात्रों

और दुष्ट पात्रों का पग पग पर संघर्ष दर्शाया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने वर्तमान शती के आरम्भिक काल में हैदराबाद के हिन्दुओं की जातीय (Racial) स्थिति का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया है। किशनी इस उपन्यास की प्रधान नायका और एक आदर्श स्त्री है। वह पढ़ी-लिखी और शान्त स्वभाव वाली है। किशनी भगवत् इच्छा ही सर्वोपरि मानकर सब सहन करती रहती है। वह समय प्रदत्त कष्टों का सामना करती हुई अन्ततः उच्चता को प्राप्त होती है।

लेखक उपन्यास का आरम्भ इस प्रकार करते हैं :-

"किशनी बेचारी ! ससुई की भांति इसका भाग्य भी इतना सरल नहीं था। ससुई के लिए शाह लतीफ ने कहा है।

सिरजी तां सूर, सामाणी तां सुख विया,
इहे बई पूर, निमाणीअ नसीबु थिया।

(जन्मी तो दुख सहे, युवा हुई तो सुख गए, ये दोनों ही प्रभाव, बेचारी को प्राप्त हुए)

यह भाग्यहीन भी उत्पन्न हुई तो जल्दी ही इसकी माँ का देहान्त हो गया, जिस से लालन-पालन का सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। फिर जब युवा हुई, विवाह हुआ और एक पुत्री, दो पुत्रों को जन्म दिया तब घरवाले को किसी भोपी डाइन ने मुंह में पान डालकर दुराशय वचन कहे तो वह बेचारा अचानक ही भरी जवानी में इस जगत से चलता बना।" (१०)

"किशनी का पति रूपचन्द की माता-पिता से अनबन हुई। बस, पत्नी और बच्चे लेकर, माता-पिता से अलग होकर हैदराबाद से कराची आकर रहने लगा। चालीस रुपया मासिक वेतन मिलता था। बेचारे अध्यापकों की स्थिति ही क्या?" आण्यूं ऐं चाढ़ियूं, डुथ डिहाड़ी सूमरा।" (जब चार पैसे कमाएं तब हांडी चूल्हे चढ़े और खाएं)। जब रूपचन्द का देहान्त हुआ, तब घर में इतना पैसा भी नहीं था जिससे उसका क्रियाकर्म हो सके। उसी समय स्कूल के प्रधानाध्यापक ने वेतन से तीस रुपये अग्रिम दिए, जिससे काम चलाया गया।

किशनी पढ़ी-लिखी थी, उसे विद्या का ही सहारा था। मन छोटा नहीं किया, पर इतना समझ गई कि इसके पश्चात कराची हमारा नहीं रहा। इसलिए अपना घर बार लेकर हैदराबाद आ गई। वहां अपनी एक निकटतम सम्बन्धी तीर्थबाई के यहां पहुंची और कहा कि बच्चों सहित सिर छिपाने का थोड़ा सा स्थान किराए दे दें। तीर्थबाई ने

कहा कि मेरे पति आएं तो उनसे बात करूं। श्री प्रभदास रात को घर लौटे तो तीर्थ बाई ने सारी बात कह सुनाई। बात सुनते ही वह अवाक रह गए। किशनी के पति रूपचन्द के देहान्त हो जाने का तो उन्हें ज़रा भी दुख नहीं हुआ। उलटा किशनी को तंग करना शुरू कर दिया ।

श्री प्रभदास उस समय सेठ मोहनलाल के यहां मुनीम थे। किशनी को पहले ही अनुमान हो गया था कि सम्बन्धियों से कोई सहायता नहीं मिलेगी। इसलिए वह एक धर्मात्मा पुरुष का पत्र लेकर सीधी ही जाकर सेठ मोहन लाल से मिली। सेठ मोहन लाल का व्यवसाय बहुत अच्छा चल रहा था। शहर में उनके कई मकान थे, जो वे किराए देते थे। उन्होंने श्री प्रभदास को आदेश दिया कि अमुक मकान जो किसी अन्य को दिया जाना था, उसे न देकर, किशनी को दे दें और भाड़ा भी मात्र दो रुपये महीना लें। इतना सुनते ही मुनीम प्रभदास अवाक रह गए। बहुत ही हाथ पाँव मारे कि किशनी को शहर में कोई मकान न मिले, परन्तु सेठजी अपने इरादे पर अटल रहे। आख़िर किशनी को सिर छिपाने के लिए एक मकान मिल गया। पर पैसा तो पल्ले था ही नहीं और न ही था कोई आय का साधन। कई कई दिन उसे और बच्चों को उपवास करके निकालने पड़ते थे। यहां, ईश्वर ने उसके लिए एक राह बनाई। एक पड़ोसन को इनकी दुखी स्थिति का आभास हो गया। उसने किशनी को एक कन्या विद्यालय में पढ़ाने का कार्य दिलवा दिया। वेतन दस रुपये मासिक। उधर किशनी के दोनों पुत्रों को भी अंग्रेजी मिशन के स्कूल में प्रवेश मिल गया, जहां निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। परन्तु दस रुपयों में चार प्राणियों का जीवन-यापन कठिन था।

सेठ मोहनलाल कुछ माह के लिए तीर्थ यात्रा पर चले गए। पीछे से किश्नी पाँच-छः माह का मकान भाड़ा जमा नहीं करा सकी। मुनीम प्रभदास को तो ऐसा अवसर चाहिए था। उन्होंने केस दाइर कर किशनी से मकान खाली कराने के लिए कोर्ट से आदेश ले लिया। डिक्री लेकर वे किशनी के द्वार जा पहुँचे। परन्तु किशनी का भाग्य अच्छा था कि ठीक उसी दिन सेठ मोहन लाल हैदराबाद वापस आ पहुंचे। स्टेशन पर ही उन्हें सब वृतान्त की जानकारी मिल गई। वे सीधे किशनी के घर आ पहुंचे। अपनी जेब से पैसे भरकर 'बेल्फ़' (Bailiff) को वापस किया और किशनी से क्षमा मांगी। मुनीम प्रभदास इस पर बहुत लज्जित हुए, किन्तु अपनी आदत नहीं छोड़ सके।

सेठ मोहनलाल ने किशनी के ज्येष्ठ पुत्र चेतन को अपने यहां तीस रुपए मासिक वेतन पर क्लर्क रख लिया। इस पर तो श्री प्रभदास अत्यन्त जलभुन गए। उनका अपना

पुत्र जीया, सर्वथा कपूत और अशिष्ठ था। परन्तु उन्होंने सेठ से निवेदन कर उसे भी वहीं नौकरी दिलवा दी। दफ्तर में जीया, चेतन से झगड़ लिया। साधारण-साधारण सी बात पर वह चेतन को सताता रहता था। एक बार उसने अवसर पाकर सेठ मोहन लाल के सौ रुपए चुरा लिए और ऐसी युक्ति खेली कि दोष चेतन पर आए। पर सेठ मोहनलाल को चेतन पर पूर्ण विश्वास था। जांच-पड़ताल से स्पष्ट हो गया कि पैसे जीया न चुराए थे। उधर श्री प्रभदास त्याग-पत्र देकर नौकरी छोड़कर चले गए तो जीया भी शहर छोड़कर कहीं बाहर भाग गया । श्री प्रभदास तो पहले से ही सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति थे। ऊपर से फिर जो नौकरी छोड़, बेकार होकर घर आ बैठे तो जुआ-शराब से मन बहलाने लगे। थोड़े ही समय में अपनी जमा पूंजी धन्धे में लगा दी। फिर तो बीमारियों ने भी आ घेरा। जब अन्तिम सांसें गिन रहे थे तब बहकते हुए बड़बड़ाकर कहने लगे कि मैंने अकारण ही किशनी और उसके बच्चों से बैर किया। बहकने से यह बात भी सामने आई कि श्री दलपतराय अपनी सम्पति का आधा भाग रूपे (श्री रूपचन्द, किशनी के पति) को देने की वसीयत कर गए थे। परन्तु इसकी सूचना श्री प्रभदास ने कराची में रूपे को नहीं दी और उसका भाग भी स्वयं हड़प कर गए थे । इस कारण उनका अन्तस सदा उन्हें कचोटता रहता था कि किशनी, जो अपने पति के देहान्त पश्चात हैदराबाद आ गई है, कहीं उसे इस धोखाधड़ी का आभास न हो जाए ।

अस्तु, श्री प्रभदास का देहान्त हो गया तो किशनी और उसके बेटे चेतन ने श्री प्रभदास की पत्नी तीर्थबाई और उसके छोटे बेटे भैरूं और बेटी को लाकर अपने साथ रख लिया। चेतन ने अपने भाई-बहन सा ही व्यवहार श्री प्रभदास के बच्चों के साथ किया और पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया। सेठ मोहनलाल का चेतन पर इतना विश्वास हो गया कि उसे न केवल अपने व्यवसाय में साझेदार बनाया बल्कि अपनी बेटी का विवाह भी उसके साथ कर दिया। चेतन का छोटा भाई भी पढ़ लिखकर योग्य हो गया। "किशनी, तुम सचमुच सुशील स्त्री थी !"

श्री लालचन्द ने इस उपन्यास में भी हैदराबाद के हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया है। उन्होंने दर्शाया है कि स्त्रियां यदि शिक्षा ग्रहण करती हैं तो विपत्तियां आने पर भयभीत नहीं होती, अपितु साहस और शांति से अपने पैरों पर खड़े होकर जीवन में आने वाली कठिनाईयों का सामना करती हैं।

लेखक ने पूरे उपन्यास में आदर्श और दुष्ट पात्रों के बीच टक्कर और संघर्ष दर्शाया है। उनमें अन्ततः सत्य की विजय होती है और पाप पराजित होता है। इस

दृष्टि से यह रचना 'चोथ जो चाण्डु' से भिन्न है। 'चोथ जो चण्डु' में लालचन्द जी ने दृश्यों तथा घटनाओं को उभारने पर अधिक ध्यान दिया है। कभी-कभी तो उनको इतना लम्बा कर देते हैं कि कथानक का क्रम ही टूट जाता है। पर इस उपन्यास में घटनाओं के वर्णन या पात्रों के चरित्रों पर सीधी समीक्षा कर उसे अधिक लम्बा नहीं किया गया है। इस कारण कहानी क्रम से और तीव्र गति से आगे बढ़ती है। श्री प्रभदास ने किशनी से क्यों बैर किया, इसका रहस्य भी लेखक ने अंत में बताकर, पाठकों के मन में जिज्ञासा को बनाए रखा है। 'चोथ जो चण्डु' की भांति उपन्यास में शेरों (काव्यांशों) और बैतों की भरमार नहीं है। न ही अन्य लेखकों के उद्धरणों से अध्यायों का आरम्भ किया गया है। अतः कथानक की योजना और उपन्यास कला की दृष्टि से 'किशनीअ जो कष्टु', 'चोथ जो चण्डु' की तुलना में अधिक सफल रचना है।

(२) कहानियाँ

श्री लालचन्द की कहानियाँ भी उनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों की तरह जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित हैं। उनके सजग मन ने, दैनिक जीवन में अन्य लोगों द्वारा किए गए व्यवहार के समय जो प्रभाव अनुभव किए हैं, उन्होंने कहानियों का रूप लिया है। यह लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। श्री लालचन्द की कहानियां भिन्न-भिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कुछ समय पूर्व 'सिन्धी टाईम्स पब्लिकेशन', उल्हासनगर की ओर से जुलाई १९८३ में लालचन्द जी की रचनाओं का एक संग्रह, प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है 'दाणे दाणे ते मुहिर' (दाने दाने पर मोहर)! उसमें लेखक की कहानियाँ भी हैं, संस्मरण भी हैं तो रेखा चित्र और निबन्ध भी हैं। लालचन्दजी की रचनाओं का अनुलेख ऐसा है जो उनके व्यक्तिगत संस्मरणों, रेखा चित्रों और कई निबन्धों से भी प्रायः कहानी जैसा आनन्द आता है। परन्तु यदि सूक्ष्मता से उनका अध्ययन किया जाए तो उनको साहित्य की इन पृथक पृथक विद्याओं में बांटा जा सकता है अतः यहां भी उन पर पृथक पृथक ही विचार किया जाएगा।

श्री लालचन्द की प्रमुख कहानियाँ हैं – 'नव वर्नीअ जो खून' (नव विवाहिता की हत्या) (१९२३), 'डुखनि डुधी जिन्दगी' (कष्ट जनित जीवन) (१९२५), और 'नंढिरी नयना' (छोटी सी नयना) (१९४६)। ये सब गृह तथा सामाजिक जीवन के वातावरण पर आधारित हैं। लेखक ने जीवन से कुछ वास्तविकाताओं को चुनकर, उन्हें कल्पना

की भाषा देकर प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ यहां 'नंढिरी नयना' [११] कहानी दी जा रही है। इसमें एक युवा विधवा की अनुभूतियों का मुक्तकंठ से वर्णन किया गया है। लेखक ने इसमें अप्रत्यक्ष रूप से अल्पायु में विवाह कर देने पर उसके कुप्रभावों की ओर भी संकेत किया है। 'नंढिरी नयना' कहानी प्रथम बार 'महराण' पत्रिका में १९४६ में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका उस वर्ष 'सिन्धी अदब लाय मर्कज़ी सलाहकार बोर्ड' कराची की ओर से आरम्भ की गई थी और श्री लालचन्द स्वयं उसके प्रबन्ध-सम्पादक थे।

'नंढिरी नयना'

नंढिरी (छोटी सी) नयना राय साहब कर्मचन्द की इकलौती पुत्री थी। और कोई पुत्र-पुत्री उनके था ही नहीं। मां-बाप ने नयना को बड़े लाडप्यार से पाला। खाने-पीने और पहनने की तो कोई कमी थी नहीं उनके यहां। ज्ञान में भी उन्होंने अपनी लाडली को पर्याप्त दक्ष किया था। 'पंजू देरो' गांव इतना सा, उसमें नन्ही सी यह बालिका आने-जाने वालों के लिए खिलौना सी थी। आया-गया उसे देखकर यूं कहता था - बड़ा भाग्यशाली होगा वह, जिसका यह स्वर्ण सुन्दरी घर बसाएगी !

दिन निकलते देर नहीं लगती। नयना आज छोटी, कल बड़ी। राय साहब कर्मचन्द और देवी रुक्मिणी को चिन्ता सताने लगी कि अब कन्या को अधिक घर में बैठाए न रखा जाए, उसका विवाह कर दिया जाए। नयना की आयु अभी बारह वर्ष, यूं कहें कि अभी वह इतनी बड़ी भी नहीं हो गई थी, तब भी माता-पिता सोचने लगे कि जीवन के दिन चार, जीवन का क्या भरोसा, कल यदि काल हम पर चढ़ाई कर दे तो ! इससे क्यों न इसके हाथ पीले कर, इसे विवाहित देखने की अपनी कामना पूर्ण कर जाएं !

रतनकुमार भी सेठ बिहारीमल का इकलौता बेटा था। उस युवा और सम्पन्न रतनकुमार के साथ नयना का विवाह हुआ। पर, भविष्य किसने देखा है !

दो वर्ष उसने भली भांति ससुराल का सुख भोगा। पर उसके बाद, एक दिन, रतनकुमार अपनी पत्नी छोटी सी नयना के साथ रेल गाड़ी से 'मोहन जोदड़ो' की तरफ जा रहा था कि तयब के छोटे से गांव के पास छोटे रतनकुमार का गाड़ी के पाएदान से पैर फिसल गया, और वह औंधा होकर गाड़ी के चक्कों में जा गिरा ।

रतन कुमार को वहां से उठवाकर, लाड़काणा अस्तपताल लाया गया। नयना की आयु अभी चौदह वर्ष, तब भी, वह रात-दिन अपने पति की सेवा में खड़ी रही। आठों

पहर वह अबला, हाथों से पति की सेवा और मुख से ईश्वर अराधना करती रही कि, हे दाता ! मैं कड़ाह प्रसाद चढ़ाऊंगी, मेरा सुहाग मुझे बख़्श दो ।

पर विधाता ने कुछ और ही सोचा था। कड़ाह प्रसाद के स्वामी ने नयना का सुहाग, नयना के इतना पुकारने पर, इतनी आराधनाओं पर भी उसे बख़्शा नहीं।

रतनकुमार ने पीड़ा भी सही, आखिर सात दिन बाद उसने प्राण त्याग दिए। माता-पिता के लिए तो मानो सब कुछ समाप्त हो गया।

छोटी से नयना का विवाह रतन से हुआ तब वह स्वयं अबोध थी, पति के सुख का बोध उसे था नहीं। इस कारण इस अबला की अपनी कोई सनतान भी नहीं हुई थी, जिस पर वह अपना प्यार लुटाती ।

वह छोटी सी नयना अब सत्रह की हो गई।

इस आयु में कोई-कोई लड़की पूर्ण पौधे के समान युवा होती है, इस आयु में अपने शरीर की सुडौलता देख, युवती के अन्तस में न जाने कैसी कैसी तरंगे उठती हैं! इस आयु में कोई कोई लड़की अपने ही वश से विवश हो जाती है। छोटी सी नयना, जिसे अब कोई छोटी नहीं कहता था, उसके साथ भी यही बात थी।

ऐसी युवती के लिए उतावले युवक तो बहुतेरे; उसके आदेश पर गगन से तारे तोड़कर तो वे नहीं ला पाते, परन्तु यदि उनसे उनका सिर भी मांगती तो वे, वह भी उस पर न्योछावर कर देते। पर.... पर प्रकट रूप से उसके साथ विवाह कोई भी नहीं कर सकता था। शहरों में भी विधवा-विवाह खुलमखुला नहीं होते। गांवों में तो अभी लोगों की मनोवृति मनु के समय वाली ही है, वहां दी हुई लड़कियों से भला गठ-बंधन कौन बांधे ?

छोटी सी नयना, नहीं, युवा नयना को इसका भली भांति ज्ञान था । पर अब यौवन में वह स्वयं को वश में नहीं रख पा रही थी। उसने अपने वश में रहने के अत्याधिक प्रयास किए ...पर....

गोपाल नाम के एक काले कलूटे को भी किसी प्रकार आभास हो गया कि नयना... उसने अवसर पाकर नयना को आकर धमकाया कि मैं जाकर भंडाफोड़ करता हूं।

बेचारी नयना भयभीत हो गई, असमन्जस में पड़ गई कि इस दुष्ट को क्या उत्तर दूं? जानती थी, कि ससुराल वालों को ज्ञात हो गया तो, वे लातें मारकर पीहर भेज देंगे! बड़ी बात तो लोगों की भूं...भूं...

तात्पर्य यह कि लोक निंदा के भय ने इस अबला को इतना भयभीत कर दिया, कि गोपाल जैसे गंदे व्यक्ति, जिसके वस्त्र से, वस्त्र मात्र के स्पर्श से ही नयना को घिन आ रही थी, उसके भी चंगुल में यह बैचारी फंस गई ।

परन्तु, व्यक्ति का तो चलो मुंह बन्द भी हो जाएगा, प्रकृति अपना मुंह कहां बन्द करती है ! व्यक्ति तो चलो बात आई गई कर देगा, परन्तु प्रकृति में इस पीड़ा की तड़प कहां ! सो प्रकृति अन्ततः नयना पर कड़क उठी । नयना को गर्भ ठहर गया। नयना ग्रामीण बालिका, भला वह क्या जाने कि युक्ति लगाकर, प्रकृति से भी टक्कर ली जा सकती है? प्रकृति अंत में विजयी हुई, लोगों से बात छिपी नहीं रही ।

सेठ बिहारीमल के घर तो जैसे शोक छा गया। उनके लिए तो दुख में और दुख की बात थी। सेठ बिहारीमल ने वास्तव में लातें मारकर नयना को पीहर भेज दिया।

राय साहब कर्मचन्द को भी नयना पर क्रोध तो कोई कम नहीं आया। कहने लगे—भाड़ में जाए छोरी, जिसने पीहर-ससुराल दोनों लजाए हैं, वह जाकर कहीं नदी-नाले में डूब मरे।

परन्तु माँ से रहा नहीं गया। रुक्मिणी एक सुशील स्त्री थी। उसने पति को समझाया कि जो होना था सो हो चुका, अब यह सोचिए कि, अब क्या करें? आप मन दुखी न करें। नयना भले ही इस घर में रहे।

फिर माता-पिता ने बैठकर विचार-विमर्श किया। आखिर इस बात पर सहमति हुई कि, यूं जो लोक निंदा हो, उससे अच्छा है कि नयना का विवाह गोपाल से कर देते हैं।

नयना ने जब सुना तो वह स्तब्ध रह गई। उसका प्रेम तो...उसी से ही माता-पिता यदि...गोपाल तो उसे फूटी आंख नहीं सुहाता था। पर, यह अबला करे भी तो क्या?

एक ही बात फूट जाने से उस पर ससुराल-पीहर वाले क्रुद्ध हो उठे थे। अब यदि माता-पिता से कहती है कि मेरा विवाह...तो, फिर तो, पीहर से भी धक्के मारकर निकाल दी जाएगी। क्योंकि पीहर वाले कहेंगे निश्चित रूप से छोरी ही बदचलन है ।

न ही उसे यह विचार आया कि विष खाकर स्वयं को मार डालूं। क्योंकि जीवन में चाहे कितनी ही पीड़ाएं हों, तब भी जीवन अत्यन्त रसीला है। प्राण त्यागना कोई बिरला ही चाहता है। यह तो अभी कच्ची आयु की है, भला यह क्या जाने कि जीवन सुख तो मात्र क्षण भंगुर है, स्थिरता तो इसमें है ही नहीं ? उसने भी न ही विष पान

किया और न ही माता-पिता का विरोध किया कि - गोपाल से मेरा विवाह न करें।

उधर कन्हैया को जब ज्ञात हुआ कि नयना का विवाह गोपाल से हो रहा है तो स्तब्ध रह गया। वह स्वयं तो नयना से विवाह कर नहीं सकता था, क्योंकि जीवित पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करने का चाहे बंधन न भी हो, तब भी लोक निंदा तो उसका जीना दूभर कर दे। ऐसा साहस भी उसमें नहीं था कि लोक निंदा का सामना कर सके।

अन्त में उसने निर्णय किया कि नयना को मार दूंगा, पर गोपाल से विवाह नहीं करने दूंगा। पर विधाता ने कुछ और ही सोचा था।

कन्हैया ने गोपाल को ललकारा। दोनों युवक एक दूसरे के आमने-सामने हो गए।

भाग्य ने ऐसा खेल खेला कि नयना, न गोपाल को मिली और न ही कन्हैया को। गोपाल और कन्हैया ने एक दूसरे को मार-मारकर अधमरा कर दिया। लाड़काणे का वही अस्पताल, जिसमें छोटी सी नयना के छोटे से रतन ने प्राण त्यागे थे, उसमें ही नयना के प्रेमी कन्हैया और कन्हैया के प्रतिद्वन्द्वी गोपाल ने प्राण त्यागे।

इसके पश्चात नयना की सहन शक्ति भी टूट गई।

जीवन का थोड़ा बहुत जो भी सहारा था वह भी जाता रहा। आखिर उसने सोचा कि स्वयं को समाप्त ही क्यों न कर दूं। काली रात, सन्नाटा ही सन्नाटा, नयना पीहर छोड़कर बाहर निकली। रात में एक बार भी उसका मन नहीं डिगा । अजन्में बच्चे का विचार मात्र तो क्या, उलटा उसे क्रोधवश हाथ नचा-नचाकर कोसने लगी।

यूंही चलते चलते, एक कुएं के पास आ पहुंची। फिर तो दृष्टि उठाकर किसी तरफ निहारा तक नहीं, कुएं में कूद गई।

पौ फटी, प्रभात हुआ, सूर्य सिर पर आया, दिन ढला, संध्या हुई, रात हो गई तब भी उसका पता नहीं चला। आखिर, फिर सवेरा हुआ, तब एक बटोही की दृष्टि कुएं में नयना की लाश पर जा पड़ी जो पानी पर तैर रही थी।

माँ-बाप, पंचायत चाहे अन्य लोगों के मन से एक बोझ सा उतर गया। बेचारी नयना !

(३) संस्मरण

जीवन में बीते दिनों का स्मरण हर किसी को रहता है। कुछ व्यक्तियों से भेंट, कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं, कुछ मनोरंजक वृतांत, बचपन की शरारतें या कुछ मन को हिला देने वाली बातें–ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन्हें सर्वसाधारण व्यक्ति भी अपने साथियों को सुनाते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं। पर जब कोई कलाकार अपनी लेखनी के द्वारा उन्हें चित्रित करता है, तब उन्हें पढ़ते समय अत्यानन्द का अनुभव होता है। यदि लेखक समाज का महत्वपूर्ण व्यक्ति है या देश की राजनीति में विशेष स्थान रखता है, तो फिर उसके संस्मरणों को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो जाता है। कितने ही युरोपीय अधिकारियों ने अंग्रेजी शासन काल में भारत में रहते हुए आश्वर्यजनक अनुभव प्राप्त किए, जिन्हें बाद में उन्होंने लिपिबद्ध किया, आज उन्हें ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। अंग्रेजी में ऐसे लेखों को 'Memoirs' कहा जता है और हिन्दी में 'संस्मरण' और सिन्धी में 'यादगीरियूं' या 'सारूणियूं'।

सिन्धी में साहित्य के इस वर्ग का अधिक विकास नहीं हुआ है। बटवारे से पूर्व की इस प्रकार की रचनाएं अंगुलियों पर गिनने मात्र जितनी ही मिलती हैं। परन्तु देश की स्वतन्त्रता पश्चात सिन्ध में चाहे हिन्द में कई लेखक उभर कर सामने आए हैं जिन्होंने इस दिशा में अपनी लेखनी चलाई है। सिन्ध में श्री अली मुहम्मद राशदी की पुस्तक, 'उहे डींहं, उहे शींहं', श्री हसाम अलदीन राशदी की पुस्तक 'हो डोथी, हो डींहं', और श्री जे०एम० सैयद का 'जनब गुज़ारियम जिन सीं' संस्मरण लेखबद्ध करने के सुन्दर उदाहरण हैं। भारत में प्रोफ़ेसर मंघाराम मल्काणी की 'साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं' (१९७९), प्रोफ़ेसर राम पंतवाणी की 'यादगीरियूं' (१९८०) और 'गडिजाणियूं' (१९८२) इस दिशा में उत्तम प्रयास हैं।

बटवारे से पूर्व के सिन्धी साहित्य में श्री लालचन्द जगत्याणी की लिखी 'यादगीरियूं' या 'सारूणियूं' विशेष स्थान रखती हैं। इन अध्यापकजी ने अपनी अनोखी लेखनी से बचपन के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, या अपने बड़े होने के दौर के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के विशेष वृतांत और किन्ही व्यक्तित्वों के प्रभाव प्रस्तुत किए हैं, वे सिन्धी साहित्य में बहुत महत्व रखते हैं। लालचन्दजी की लेखनी में ऐसी शक्ति है जो एक साधारण सी घटना को भी वह अपने अन्तस की दृष्टि से देखकर, उसे अनोखा रंग प्रदान कर देते हैं। उनकी लेखनी पारस के समान लोहे को भी स्वर्ण बना देती है।

'बाराणे किलास में पहरियों डींहुं' (बाल कक्षा में प्रथम दिन), 'चोरीअ जो ठिकरु' (चोरी का कलंक), 'हैहिड़ो बि को नींगरु' (ऐसा भी कोई बालक), उनके आरम्भिक विद्यार्थी जीवन के चित्र हैं। 'दाणे दाणे ते मुहिर' (दाने दाने पर मोहर) या 'बई पोटा हिक डाडे जा' (दोनों पोते एक दादा के) उनके बड़े होने पर व्यक्तिगत अनुभवों के अनोखे चित्र हैं। यहां उनके संस्मरणों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे है।

(i) हकु मुहिंजो, तबि इनाम मूंखे छो न मिल्या ![१२]

(अधिकार मेरा, तब भी पुरस्कार मुझे क्यों नहीं मिले !)

यह १८९५ की बात है।

खपेर में सिन्धी की छठी कक्षा में पढ़ रहा था। ल्यूकस थे क्षेत्र के डिप्टी कमिश्नर। एक बार मुख़्तारकार के साथ स्कूल चले आए।

विद्यार्थियों से एक मौखिक प्रश्न पूछा—रुपये डो (दो) सौ बांटो। चोरा (छोरा) ५ और चोकरी (छोकरी) ४, पर हरेक चोकरी को ५ रुपया जासती डो। बटाओ एक एक चोकरे (छोकरे) को किटना मिलेगा ?

मैंने झट से हिसाब लगाकर उत्तर दिया— ट्वेंटी सर।

पर मुझे मानो सुना ही नहीं। अन्य किसी विद्यार्थी ने कहा—श्रीमान, बीस। तो उसे पाँच रुपये का पुरस्कार दिया, पर मुझे नहीं।

फिर दूसरा प्रश्न मिला। उसका उत्तर भी मैंने सही निकाला। पर मैंने कहा—सेवन सर; और उसे मेरे सहपाठी ने कहा—श्रीमान, सात।

इस बार भी पुरस्कार की कृपा उस पर हुई और मैं यूं ही रह गया।

यूं अंक गणित के अन्य प्रश्नों के उत्तर भी मैंने सही दिए, पर फिर भी जैसा-जैसा उत्तर था वह अंग्रेजी में दिया।

फिर भी पुरस्कार मुझे नहीं मिले।

मैं चकित, कि साहब यह क्या कर रहे हैं !

उसी समय आदेश हुआ—मान लो आपका बाबा आपका गांव में है। बाबा को पत्र लिखो कि आपका वास्टे वहां से क्या-क्या लेकर आटा।

मैं पत्र लिखने में भी अन्य विद्यार्थियों से अधिक कुशल था। मैंने पत्र का आरम्भ, परम पूजनीय बाबाजी आदि लिखकर पश्चात निवेदन है कि— इस प्रकार लिखकर फिर कुशलता और अन्य समाचार आदि का वर्णन करते हुए अन्त में निवेदन किया कि आप इस तरफ आएं तो हैदराबाद से मेरे लिए राजू दर्जी से एक अंग्रेजी पतलून और

गागनमल की शॉप से ७ नम्बर का डासन बूट ले आईएगा।"

कक्षा में कुल सात विद्यार्थी थे।

मेरे पत्र लिखने का ढंग अन्य सब के ढंग से उत्तम था, तब भी साहब ने इस बार भी मुझे अनदेखा कर पुरस्कार एक अन्य को देने की घोषणा की।

अब मुझसे रहा नहीं गया। मैंने भी खीझते हुए, साहब से कह दिया–सर, यह क्या ?

उन्होंने अपनी नीली-नीली आँखें मेरे मुंह पर जमाकर कहा– चोकरा (छोकरा) डेख। यह टुमारा (तुम्हारा) मुख़्तारकार साहब, इनको सिंडी (सिन्धी) पजामा और सिंडी जूती पहने है। फिर विलायटी (विलायती) बूट और अंग्रेजी पटलून टुम क्या करेगा ?

"पर सर ! गणित के प्रश्नों के उत्तर तो सबसे पहले, सही मैंने ही दिए।"

"हाँ, पर टुम उटर सिंडी में नई डिया।"

बात यूं थी।

मैं नया-नया ही हैदराबद से आया था। नहीं-नहीं, दादाजी वहां से मुझे बलात ले आए थे, क्योंकि हैदराबाद में मेरी मित्रता कुछ उदंड लड़कों से हो गई थी और मैं भी उदंड हो गया था। वहां अंग्रेजी कक्षाओं में अंग्रेज़ी अंक बोलना सीखे थे, सो वह आदत अभी छूटी नहीं थी।

अधिकार मेरा, तब भी पुरस्कार, इसी कारण मुझे नहीं मिले।

(यहां लालचन्दजी ने अपनी भाषा और सभ्यता-संस्कृति से प्रेम करने और उसे अपनाने का सदुपदेश बालकों का दिया है)

(ii) श्री लालचन्द १९२२ में असहयोग आंदोलन में गिरफ्तार हुए। उन्हें एक वर्ष की सज़ा मिली, अनुमानतः आठ माह उन्होंने थाणा (बम्बई के पास) जेल में बिताए और शेष समय कराची जेल में। वहां उन्हें अकेला ही अलग कमरे में रखा गया था। वहां यह लेखक महोदय, लिखने-पढ़ने में ही अपना समय बिताते थे। वहां पशु-पक्षी ही उनके साथी और मन बहलाने वाले थे। 'दाणे दाणे ते मुहिर' नामक संस्मरण में लालचन्दजी ने उनका एक चित्र प्रस्तुत किया है। उसमें से यह अंश देखिए :–

फिर से, कराची के सरकारी होटल में नामवर सरकार का अतिथि बना बैठा हूं।

नाश्ते में कांजी के बदले मुझे जुआर की पतली आधी रोटी मिलती।

मैं क्या करता कि नाश्ते वाला वह टुकड़ा छबड़ी में छिपाकर रख देता, कि ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे दूसरी दाल-रोटी आये, तो उसके साथ खाऊं।

अदालत से, अकेला रखने का बंधन मुझ पर नहीं लगाया गया था, पर नामवर सरकार ने मुझ पर दया कर सरकारी होटल के अकेले बंगले में मुझे रखा था।

उस बंगले में स्वाभाविक ही अन्य प्राणियों से मेरा परिचय हो गया।

मैं दो समय खाना खाने बैठता तो, कुत्ता, बिल्ली, कौआ, पंडुकियां और नेवला आदि सब ज़रा से टुकड़े की लालच में रोज़ आकर प्रकट होते।

कुत्ता या बिल्ली आपस में गुर्राते नहीं थे, अपना-अपना टुकड़ा लेकर, एक तरफ बैठकर खाते।

कौआ और पंडुकियां भी मुझे देखकर आपस में लड़ते नहीं थे। भली-भांति समझ गए थे कि मैं कौन सा टुकड़ा किसे देना चाहता हूं। हर एक वह लेकर, बैठकर खाता।

केवल नेवला ऐसा पाजी, कि मेरे स्वाभाव को समझे ही नहीं। अपना टुकड़ा तो खा जाए, पर दूसरों के टुकड़ों पर भी अपनी आंखें गड़ाए बैठा रहे।

मैं कौए और पंडुकियों को टुकड़ा फेंकूं तो वह झपटकर ले जाए। कौआ और पंडुकियां तो बेचारे नन्हे से जीव, पर वे जो कुत्ता और बिल्ली उससे तगड़े थे, उनके टुकड़ों से भी वह नहीं चूकता। किसी किसी समय तो, वे अभी मुंह उठाकर अपना टुकड़ा लेने को हों कि उससे पहले ही वह उनका टुकड़ा भी झपट ले।

एक बार मुझे भी आया क्रोध। मन में सोचने लगा कि आज नेवले को उसके टुकड़े से भी वंचित रखूंगा।

परन्तु, ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज गए, दूसरी दाल-रोटी आए ही आए कि उससे पहले सुनता हूँ कि कहीं से 'टुक-टुक' का स्वर सुनाई दे रहा है।

मैं कान लगाकर, बरामदे में से उठकर अन्दर गया। देखा, नेवला छबड़ी के ढक्कन को कुतर कर छबड़ी में रखी रोटी को जा लगा था !

नेवले के यह ढंग देखकर मैंने और भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि आज तो उसे निश्चित ही भूखा रखूंगा।

पर ईश्वर की लीला कैसी !

खाना पुरसकर आ गया, तो न कुत्ते को देखा और न ही बिल्ली को। और फिर, न ही कोई कौआ या पंडुकी ही दिखाई दिए।

मैं सदा की भांति जने-जने के लिए रोटी टुकड़ा बना रहा था, रह रहकर हर एक की राह निहार रहा था। पर उन सब में से भला एक का भी कोई पता लगे, नहीं, कदापि नहीं।

हां, नेवला सो समय पर आ उपस्थित हुआ।

वह आशा से, मानों कह रहा था– भला मेरा हिसा तो मुझे दे दो !

मैं सिर हिलाकर उत्तर दे रहा था– आज तो सदा जितना भी रोटी टुकड़ा कहोगे तो, वह भी तुम्हें नहीं दिया जाएगा। धूर्त ! तुम किसी को सहते भी हो ? सोचते हो कि सब मैं ही हड़प कर जाऊं। अन्य प्राणी भी देखो, तुम्हारी तरह दूसरों के टुकड़ों पर तो नहीं झपटते। अपना हिसा लेकर, हर एक चलता बनता है। तुम ही एक पेटू हो। तुम्हें आज यह सज़ा है !

नेवले ने बहुत अनुनय विनय की, समझता हूं नाक भी रगड़ी, पर मैं अपने ही निश्चय पर अटल था। उलटा सदा वाला टुकड़ा भी उसे नहीं दे रहा था।

मुझे यही आशा थी कि कुत्ता, बिल्ली, कौआ और पंडुकियां अभी आते ही होंगे। आज इसका टुकड़ा भी उनको ही दे दूंगा।

सोचा–चिन्ता नहीं। स्वयं को सांत्वना दी कि-शाम को अवश्य आएंगे।

इसी आशा पर सवेरे वाला टुकड़ा भी उनके लिए अलग करके रख लिया।

पर संध्या हुई, तब भी क्या ?

नेवले ने आकर दण्डवत किया। अन्य प्राणी फिर भी नदारद !

मैं खाना खाकर उठा, तब भी उन प्राणियों में से कोई भी नहीं आया।

तब मैंने नेवले से कहा–'बाबा दूसरों के टुकड़े पर भी आज तुम्हारी ही मोहर लगी हुई है, फिर भला मैं कौन, जो बीच में पड़कर तुम्हारा भोजन तुम्हारे मुहं से छीनकर किसी अन्य को दूं ? लो, खाकर आनन्द करो।

(४) रेखा-चित्र (Sketches)

जिस प्रकार कोई चित्रकार रंगों और कूंची से चित्र बनाता है, वैसे ही लेखक भाषा और विशेष अनुलेख के द्वारा किसी व्यक्ति या वस्तु का इस प्रकार वर्णन करता है कि उसका चित्र हू-ब-हू आंखों के सामने फिरने लगे, ऐसी रचना को रेखा चित्र कहते हैं। लंबान या विस्तार नहीं होता है। पर जिसका वर्णन किया जाता है, उसकी विशेषताओं या गुणों को उभारने से उसके रूप अथवा स्वभाव को साकार किया जाता है। अंग्रेजी में इसको स्केच (Sketch) कहते हैं। हिन्दी में इसे 'रेखा चित्र' या 'शब्द चित्र' कहा गया है। सिन्धी में इस वर्ग की अधिक प्रगति नहीं हुई है। इस दिशा में श्री लालचन्द ने अत्यन्त रोचक और प्रभावपूर्ण रेखा चित्र हमें दिए हैं। 'अमीं सुकार',

'तिलोक टेमी', 'न वधु, बच्चू', 'मूं बि संगितीअ' में की त डिठो हो', 'असां जो नाअं चढ़ियो हैडमास्तरु', 'खुद साख़्ता सदरु मुन्सिफु' लालचन्दजी द्वारा प्रस्तुत किए गए रेखा चित्रों के कुछ उदाहरण हैं। बानगी तौर यहां कुछ अंश दिए जा रहे हैं।

'अमीं सुकार'[१४]

"अमीं * सुकार, बड़ी मां की एक ही बूआ, मैंने देखा था उन्हें, तब भी बहुत बूढ़ी थीं।... मन्दिर-मढ़ी से जो कुछ प्रसाद या खाने की वस्तु उन्हें मिलती थी, उससे सभी बच्चों को राजी करती थीं।...

सिर के बाल कोहरे समान श्वेत, मुंह चौड़ा पर झुर्रियाँ अनेक, दाहिने गाल पर, नाक के नथुने से कुछ ही दूरी पर बड़ा सा मस्सा, जिसमें पांच-सात सफेद बाल यूं रुपे हुए मानों खजूर के वृक्ष के पत्ते पेड़ के ऊपरी सिरे से लटक रहे हों, ऊपर के होंठ पर पतली-पतली रेख भी, वृद्धावस्था के कारण कमर दोहरी, ससुराल के घर लौट जाए, उससे पूर्व क्षण भर के लिए, विश्राम आकर ** धुईं वाली गली में अपने छोटे भतीजे अर्थात हमारी बड़ी अम्मा के यहां करती थीं।

'तिलोक टेमी'[१५]

"काका, घड़ी में तो देखिए, बजा क्या है ?

काका तिलोकचन्द, सदरी की ऊपरी जेब से घड़ी निकालकर, समय देख ही रहा होगा कि हम लोगों में से एक जना उदास होने का नाटक करते हुए पूछेगा—काका, छः बजे हैं क्या ?

इस पर जो वह वृद्ध बिगड़ उठे, सो कुछ समय तो शान्त ही न हो। भूण्डा देगा, गन्दी गालियां देगा, सामने कोई बच्चा हो या बूढ़ा, जवान हो या अधेड़, उसपर कभी लाठी भी उठा लेगा। हम लोग छोटे-बड़े, दाँत निकालकर खड़े-खड़े हँसते रहेंगे और रह-रहकर-काका, काका, सची कहीए छः बजे हैं क्या ? कहकर उस वृद्ध को उलटा अधिक छेड़ते रहेंगे।

काका तिलोकचन्द का एक टेम (स्वभाव) यह, कि किसी के मुंह से सुन लिया कि छः बजे हैं क्या ? तो काका को ऐसी चिंगारी लगेगी, कि जिस स्थान पर खड़े होंगे सिर पर उठा लेंगे।"

---

* अमीं = नानी या दादी अथवा किसी वृद्धा के लिए संबोधन। ** धुईं = धुआं

*** भूण्डा = किसी की ओर अपने हाथ का पंजा सीधा खोलकर उसे बुरा-भला कहना।

'न वधु बच्चू !'[१६]

(आगे मत बढ़ बच्चू)

"यह, मैं कोई सैंत्तीस वर्ष पूर्व की बात कह रहा हूं। बच्चू फ़क़ीर, अलमस्त, सिर नंगा, न पैरों में जूती, कंधों पर सदरी, धागे-डोरे, सलवार पहने, वह भी मैली-कुचैली पुरानी। हैदराबाद शहर में, संध्या-सवेरे पड़ा बाज़ार नापता।

बच्चू, शरीर का हलका और ठिगना था। न जाने शायद वह लंगड़ाकर भी चलता था।

वह रोज़ बाज़ार से निकलता। हाथों में छोटा सा हुक्क़ा नित नया, पड़ा गुड़गुड़ाता। बच्चों ने उसे देखा नहीं कि आवाज़ों पर आवाज़ें लगाना शुरु कर देंगे।

वह कुछ कहेगा, बच्चों को पुचकारेगा, पड़ा अपना हुक्क़ा भी गुड़गुड़ाएगा, बच्चों के साथ मीठी-मीठी बातें भी करता रहेगा।

पर बच्चे बन्दर जात उसे छेड़ने लगेंगे, इधर-उधर से दूर पास से बच्चे कहेंगे– न वधु बच्चू ! न वधु बच्चू ! (आगे मत बढ़, बच्चू ! आगे मत बढ़, बच्चू !)

फिर बच्चू बिगड़ेगा।

पहले तो बच्चों की मिन्नतें करेगा, नाक रगड़ेगा, हाथ उठा-उठाकर आशीषें कहेगा,कि–अरे ! वह दाता भला करेगा तुम्हारा। दाता पीर-दस्तगीर तुम्हें बहुत देगा। अरे ! मुझ गरीब (ग़रीब) क़ो दुखी मत करो, मुझ मिस्कीन (दुखियारे) को सताओ मत!

पर बच्चे भला रहते हैं !

उसकी बकबक, उनकी धमा चैकड़ी–न वधु, बच्चू ! न वधु बच्चू ! बच्चू, पैर उठाता ही, कि फिर ढीला पड़ जाता। बच्चे कहते–न वधु बच्चू ! इस ताल पर वह भी पैर उठाकर रुक जाता।

वह पैर बढ़ाता ही कि बच्चे चिल्लाते – न वधु बच्चू ! न वधु बच्चू !

बच्चू को आता क्रोध, सो उठाकर अपना हुक्क़ा पटकता। फिर, नलकी कहीं तो पेंदा कहीं, चिल्लम भी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती !

वह अपने हुक्के का हाल देखकर चीख़ने-चिल्लाने लगता। सिर पीटता, दाढ़ी के बाल नोचकर मुंह पीटता, शरीर पर काले-काले नील डाल लेता।

उस समय, कोई उसका भयानक चेहरा देखे ! दांत पीसता, मुंह से राल टपकाता रहता और दहाड़ें मार-मारकर रोता रहता।

पर बच्चों को कोई दया आती, कदापि नहीं....

बरस हुए, बच्चू फक़ीर, अलमस्त, मर गया। बच्चों के लिए एक मनोरंजन था।"

(५) नाटक

श्री लालचन्द जगत्याणी प्रथम सिन्धी नाटककार हैं जिन्होंने सिन्धी लोक-कथाओं से एक विषय चुनकर, उस पर नाटक लिखकर सफलतापूर्वक मंचित कर दिखाया। सिन्धी नाटकों की प्रगति को देखते हुए ज्ञात होता है कि सिन्धी में नाटक लिखने का आरम्भ करने का श्रेय मिर्ज़ा कलीच बेग (१८५३-१९२९) को है। उन्होंने सिन्धी में 'लैला मजनू' नाम से नाटक सन् १८८० में लिखा था, जो सिन्धी भाषा में प्रथम नाटक है। उसके बाद उनका लिखा हुआ दूसरा नाटक 'ख़ुर्शीद' सन् १८८७ में प्रकाशित हुआ। गत शताब्दी के अन्त तक सिन्धी में मौलिक और अनूदित नाटक बहुत ही प्रकाशित होकर प्रसारित हुए। पर उनमें एक भी नाटक ऐसा नहीं था जिसका विषय किसी सिन्धी लोक-कथा पर आधारित हो। इस प्रकार की रचना का सूचन करने का श्रेय श्री खानचन्द दरियाणी को है, जिनका लिखा नाटक 'मूमल-मेंघरो' (मूमल-महेन्द्रा) सन् १९२२ में सिन्धी साहित सोसायटी वालों ने प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया था। पश्चात यह नाटक 'श्री दयाराम जेठमल सिन्धु कालेज' के विद्यार्थियों द्वारा सन् १९२८ में कालेज के वार्षिकोत्सव में कराची में दिखाया गया था। परन्तु, इससे तीन वर्ष पूर्व सन् १९२५ में श्री लालचन्द जगत्याणी का लिखा नाटक 'उमरु मारुई' श्री रवीन्द्रनाथ लिट्री और ड्रामाटिक क्लब, हैदराबाद सिन्ध वालों ने सफलतापूर्वक मंचित किया था। यही नाटक उसी वर्ष ही इसी क्लब वालों ने प्रकाशित करवाकर प्रसारित भी किया था। इस प्रकार मंच पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से 'उमरु मारुई' प्रथम सिन्धी नाटक है, जो किसी सिन्धी लोक कथा के आधार पर सृजित है।

श्री लालचन्द को नाटक लिखने की रुचि तब उत्पन्न हुई, जब वे सन् १९०३ में मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा उत्तीर्ण कर 'श्री नवलराय हीरानन्द अकेडमी' में अध्यापक हो गए थे। उस समय उन्होंने छोटे-छोटे नाटक, राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं पर लिखकर विद्यालय के विद्यार्थियों से मंच पर प्रस्तुत करवाए थे। केवल इतना ही नहीं अपितु कुछ वर्षों बाद लालचन्दजी ने स्वयं भी नाटकों में अभिनय किया और मंच पर आए। सन् १९११ में श्री लालचन्द ने मिर्ज़ा कलीच बेग के लिखे नाटक 'नेकी-बदी' में एक सभ्य आचरण वाले मित्र का अभिनय इतनी सफलतापूर्वक निभाया कि वह कई दिनों तक दर्शकों के मन पर छाया रहा। वही नाटक पुनः १९१६ में मंचित किया गया, उसमें भी लालचन्दजी ने वही भूमिका निभायी। उन्होंने इसी वर्ष श्री नानकराम धर्मदास

मीरचन्दाणी के लिखे नाटक 'नेक अंजामु' में भी लेखक के साथ प्रधान भूमिका निभायी थी। यह नाटक हैदराबाद अमैच्योर ड्रामाटिक सोसायटी द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

सन् १९२३ में श्री खानचन्द दरियाणी, श्री हीरानन्द आडवाणी, श्री लालचन्द जगत्याणी, श्री जेठमल परसराम गुलराजणी और श्री मंघाराम मल्काणी ने मिलकर एक नयी अदबी सोसायटी स्थापित की। उसका नाम था 'श्री रवीन्द्रनाथ लिट्री और ड्रामाटिक क्लब'। इसके उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता स्वयं महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हैदराबाद पधारकर की थी। उस अवसर पर टैगोरजी का नाटक 'चित्रा' अंग्रेजी में मंचित किया गया और 'नेकी-बदी' नाटक के कुछ हंसाने वाले अंश भी प्रस्तुत किए गए थे।

श्री लालचन्द के तीन वृहत नाटक प्रकाशित हुए हैं– 'उमरु मारुई' (१९२५), 'सुहिणी मेहार' (सोहिनी महिवाल) श्री डंगोमल यधाणी के साथ मिलकर लिखा हुआ (१९३९) और 'मीरा' (श्री लालचन्द के स्वर्गवास पश्चात उनकी पुत्री द्वारा वर्ष १९५४-१९५५ में 'रूह रिहाण' के अंकों में प्रकाशित करवाकर प्रसारित किया गया)। इनमें 'उमरु मारुई' ने जो प्रसिद्धि पाई वह अन्य नाटकों को प्राप्त नहीं हुई है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह नाटक सिन्धी साहित्य की एक अत्युत्तम कृति है।

उमरु मारुई की लोककथा, सिन्ध तथा कच्छ के कोने-कोने में प्रसिद्ध है। उमरु सूमरे के समय में, थर प्रदेश के मलीर गांव में पालणे नाम का एक पंवार रहता था। उसकी पत्नी का नाम था मेराडी। उनका जीवन निर्वाह कैर-सॉंगरी (रेगिस्तान में होने वाले साग-सब्जी) और दही-छाछ पर होता था। जमीन टुकड़ा भी था, जिस पर खेती, फोग नाम के एक खेतिहर मजदूर के सहयोग से करते थे। बहुत समय आशा के सहारे व्यतीत करने के पश्चात उनके यहां एक अत्यन्त सुन्दर पुत्री का जन्म हुआ। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गई, उसकी सुन्दरता भी द्विगुणित होती गई।

पुखे मंझि पद्मणी, कर डिए वराका विजु,
जहिड़ी सूरत सिजु, तहिड़ी मूरत मारुई।

(घर में जैसे पद्मिनी के फिरते रहने पर लगता हो, बार-बार बिजली चमक रही हो, और जैसी सूर्य की सूरत (मुखाकृति) हो, वैसी ही मूरत मारुई की है)

बचपन से ही फोग का मारुई पर बहुत स्नेह था। अब उसके यौवन को देखकर, उस पर और अधिक मोहित हो गया। आखिर मन से विवश होकर, एक दिन अवसर पाकर, पालणे से मारुई को मांग लिया। पालणे ने तो मारुई का सम्बन्ध बचपन में ही

अपनी जाति के खेतसेन से कर दिया था। इस कारण फोग को स्पष्ट इनकार कर दिया। फोग की आशाओं पर पानी फिर गया। जलन और ईर्ष्या के मारे, बदला लेने के लिए उसने एक षड्यन्त्र रचा। अवसर पाकर उमर कोट पहुँचकर वहां के बादशाह उमर को भड़काया कि मलीर गांव में एक गडरिए की लड़की है, पर उसकी सुन्दरता ऐसी है जो सूर्य भी उसके सामने नतमस्क होता है। शरीर पर चिथड़े ओढ़ रखे हैं, पर यदि हार-सिंगार कर बहुमूलय वस्त्र धारण कर ले तो निसंदेह अप्सराओं को भी मात दे दे। ऐसी मोहिनी तो आपके महल में ही शोभा दे सकती है।

यह वृतांत सुनकर उमर को जैसे कामबाण सा लग गया। बिना देखे ही वह मारुई पर आसक्त हो गया। मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि उसे ऐनकेन प्राकारेण प्राप्त कर अपनी पटरानी बनाऊँगा। फिर वह भेष बदलकर रथ तैयार करवाकर फोग के साथ मलीर जा पहुँचा।

थर के कुएं प्रायः गहरे होते हैं, जिनसे पानी निकालने में समय लगता है। इस कारण, थर की लड़कियां तारों की छांव में ही उठकर पानी भरने जाती हैं। मारुई भी प्रतिदिन प्रातः समय उठकर कुएं से पानी भरने जाया करती थी। एक दिन ज्यों ही वह पौ फटने से पूर्व ही अपनी हमजोलियों के साथ कुएं से पानी भर रही थी कि बादशाह उमर और फोग ने, जो पहले से ही वहां छिपे बैठे थे इस सुअवसर का लाभ उठाया। फोग ने संकेत से उमर को मारुई दिखा दी। बस, वह तो सुन्दरता देखकर मतवाला हो गया। फिर पानी पीने के बहाने वह कुएं के पास आ गया। बेचारी मारुई ज्योंही उमर को पानी पिला रही थी कि उसने मारुई को अपनी बांहों में भर लिया। मारुई और उसकी सहेलियों ने बहुत हल्ला मचाया, पर इस बलवता और अत्याचार के सामने उनकी एक न चली। उमर बलात् मारुई को ऊंट पर डालकर नकेल घुमाकर उमरकोट की तरफ चला गया।

उमर के महलों में मारुई फूट-फूटकर रोती रहती थी। उमर ने उसे अनेकानेक सुखों का लालच दिया, उसे अपनी पटरानी बनाना चाहा, पर मारुई और अधिक रोने-बिलखने लगती। अपने गांव के भोले-भाले और सीधे-सादे मारुओं (वतनियों) का स्मरण कर विलाप करती थी। उमर की कैद में उसे पूरे बारह माह बीत गए, बालों में चीठ जम गया। हृदय में पीड़ा का जो धुआं सुलग रहा था, उसने बेचारी के मुखमण्डल को भी धूमिल कर दिया। खाना-पीना छोड़ दिया, मरणीय स्थिति हो गई। वह उमर से रोते हुए कहने लगी– "जीते जी तो स्वतन्त्रता (कैद से) नहीं मिल सकी। अब अपने

देश (मलीर गांव) के लिए तड़पते हुए, यदि मैं यहां ही मर जाऊं तो दयाकर मेरा शव मलीर भेज देना।"

मारुई को चलाचली की स्थिति में देखकर उमर भी बहुत लज्जित हुआ। अपनी करतूत पर पछताने लगा। एक किंवदन्ती के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि खेतसेन अवसर पाकर मारुई को उमर की कैद से भगाकर ले गया। इस पर बादशाह उमर फोग के फिर भड़काने पर फौज लेकर मलीर पर आक्रमण कर, मारुओं को पाठ पढ़ाने के लिए तैयार हुआ। ऐसे समय उसके कुछ मन्त्रीगण इस योजना के कारण बादशाह के विरुद्ध हो गए। यहां एक दाई ने आकर उमर को बताया कि मारुई वास्तव में आपकी धर्मबहन है। श्री लालचन्द अपने नाटक में दाई के मुंह से कहलवाते हैं कि—

"हाकिम, मैं वारी जाऊं, आपका जन्म वीरान रेगिस्तानी मैदानों में हुआ, आपकी माता अस्वस्थ थीं। वैद्य कहें कि बीमार माँ का दूध बच्चे को न पिलाया जाए। इस पर घोषणा करवाई गई कि प्रदेश में यदि कोई बच्चा जन्मा हो तो आपको उसी समय उस प्रसूतिका का दूध पिलाया जाए। ईश्वर की लीला, कि मारुई भी उसी दिन उसी समय जन्मी थी। फिर तो मारुई के साथ उसकी माँ आपको भी अपना दूध पिलाती रही।"

यह सुनकर उमर ने मलीर पर आक्रमण करने का विचार सर्वथा त्याग दिया और उसने खुदा का धन्यवाद किया कि ठीक समय पर दाई ने उसे इन बातों से अवगत करके एक बड़ा पाप करने से बचा लिया। फिर तो उमर भी कुछ साथी लेकर मलीर जाकर मारुओं के उत्सव में सम्मिलित हुआ। उन्हें मारुई की पवित्रता का विश्वास दिलाया और उन्हें मारुई अपनी बहन होने की जानकारी दी।

सिन्ध के सूफ़ी संतों और लोक कवियों ने उमर की कैद में मारुई के विलाप का अत्यन्त ही सहानुभूतिपूर्ण और मार्मिक वर्णन किया है। दूसरी बात जिसे उन्होंने विशेष सराहया है, वह है मारुई का मातृभूमि के लिए प्रेम और अपने शील पर दृढ़ रहना। सिन्ध के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि शाह अब्दुल लतीफ़ (१६८९-१७५२) द्वारा मारुई के सम्बन्ध में रचे गए बैत सिन्ध के कौने-कौने में प्रसिद्ध हैं।

श्री लालचन्द शाह अब्दुल लतीफ़ के पदों का अध्ययन तो वर्षों से करते रहे थे। फिर जब जग प्रसिद्ध महाकवि टैगोर के लेखों का गहन अध्ययन किया तो उसने न केवल उनके मन-मस्तिष्क को प्रभावित किया अपितु उन्हें लिखने की एक नयी राह भी दिखाई। उसका प्रभाव लालचन्दजी द्वारा लिखी 'सदा गुलाब' नामक पुस्तक से स्पष्ट प्रकट होता है। 'उमरु मारुई' नाटक लिखने से कुछ समय पूर्व ही लालचन्दजी श्री

रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त कर चुके थे, जब महाकवि स्वयं हैदराबाद सिन्ध पधारे थे। इस कारण इस नाटक को लिखते समय लेखक ने इन दोनों शायरों के कलाम से भी विचार लिए हैं। विशेषतया, शाह के कलाम के तो अनेक बैत ज्यों त्यों और गद्य रूप में प्रस्तुत किए हैं। नाटक की भूमिका में लेखक स्वयं लिखते हैं–

"मारुई के मन में मातृभूमि के लिए जो प्रेम था, बल्कि उमर के आदेश से उमरकोट (गढ़) में रहकर इस सती ने जो सतीत्व निभाया, उसकी कीर्ति शाह जैसे महान शायर ने अपने दुर्लभ शेर में पहले ही न गा दी होती तो मैं स्वमेव इस दिशा में कदाचित ही कोई पहल कर पाता ! मेरे अनुलेख की रग-रग, नस-नस वैसे ही उनके गुणों से परिपूर्ण होती है, फिर यदि मैं उमर मारुई की कथा, नाटक के रूप में प्रस्तुत करुं, उसमें विषय चाहे अनुलेख की दृष्टि से शाह को प्रस्तुत न करुं, भला ऐसा भी हो सकता था ? मैं जानता हूं, इस कारण, अध्ययन के समय कुछ कठिनाई होगी, परन्तु यदि धैर्य और शान्ति से पुस्तक को एक-दो बार पढ़ा, और एक बार जिह्वा अभ्यस्त हो गई तो फिर जो उन्हें आनन्द आएगा, उसकी साख पाठक स्वयं भरेंगे। पर इसके लिए मैं फिर भी कहता हूँ, यश और आभार के भागी शाह लतीफ़ हैं। अतः शाह के हीरे-मोती और लालों की आभा तो इस पुस्तक में पाठकों को प्रत्यक्ष दिखाई देगी ही, बल्कि बीच-बीच में इसमें मैंने दो चार स्थानों पर रवी बाबू के उद्यान के कुछ सदाबहार गुलाब भी अटका दिए हैं। सोचा, भले ही पाठक इनकी सुगन्ध का भी आनन्द उठाएं।"[१७]

उमरु मारुई के नाटक की योजना संक्षेप में प्रकार है–

दृश्य प्रथम स्थान-मलीर

मारुई अपने पुरखों के झोंपड़े से कुछ दूरी पर जाल (वृक्ष) के पास बैठी है। हाथ में तकुआ है जिसपर वह ऊन बट रही है। रह-रहकर प्रतीक्षावश आँखें उठाकर इधर-उधर निहार लेती है। कुछ क्षणों में खेतसेन प्रवेश करता है। दोनों एक दूसरे का, प्रेमपूर्वक मुस्कराकर सतकार करते हैं। दोनों का प्यार भरा वार्तालाप आरम्भ होता है। बातों-बातों में मारुई अपने मन की शंका प्रकट करती है, कि– हमारा सम्बन्ध तो हो गया है, फिर भी कभी-कभी भय लगता है कि किसी समय मैं तुम्हें खो न बैठूं ! दोनों का वार्तालाप चल ही रहा होता है कि मारुई की सहेलियाँ हीरा और लीला भी वहाँ आ पहुँचती हैं। इसके पश्चात खेतसेन विदा लेकर चला जाता है। थोड़ी देर बाद दो-तीन सहेलियाँ और

भी वहाँ आ जाती हैं। सब मिलकर बतियाने लगती हैं और साथ ही धरती पर चौकोर बनाकर खेलती भी हैं। यहाँ फोग भी आ पहुँचता है। वह कामुक दृष्टि से मारुई को निहार कर फिर लड़कियों से कहता है कि— मैं भी आपके साथ खेलूंगा। इस पर उनका खेलना बन्द हो जाता है। मारुई की सखियाँ रुष्ठ होकर चली जाती हैं। अब तो फोग के लिए मैदान साफ है। वह मारुई के सम्मुख अपने प्रेम का बखान करता है। पर मारुई उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देती और उसे बताती है कि—मेरा सम्बन्ध पहले ही तय हो चुका है।

मारुई और फोग में वार्तालाप चल ही रहा था कि मारुई के माता-पिता मेराडी और पालणा वहां से निकलते हैं। वे, दोनों को अकेला खड़ा देख आश्चर्य करते हैं। पूछते हैं कि—मारुई तुम्हारी सखियां कहां हैं ? मारुई बताती है कि—फोग ने आकर हमारा खेल बिगाड़ दिया। इसलिए सभी सखियां रूठकर चली गई हैं। पालणा फोग को फटकारता है। फोग बातें करते हुए मारुई का सम्बन्ध मांगता है, तो पालणा उसे बताता है कि—मारुई की सगाई बचपन में ही खेतसेन से हो चुकी है। अब तो विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। इस पर भी फोग अपने तर्क-वितर्क नहीं छोड़ता। उसी समय विगन्दु मस्खरः (विदूषक) भी हास्यरस के गीत गुनगुनाता हुआ वहां आ पहुंचता है। फोग द्वारा मारुई का सम्बन्ध मांगने की बात सुनकर उसे चिढ़ाता है। वह हंसीठठोली कर फोग को तंग करता है। आखिर फोग को वहीं छोड़कर शेष सब वहां से चले जाते हैं। फोग स्वंय से बतियाता हुआ कहता है कि—मारुई और उसके मां-बाप से ऐसा बैर निकालूंगा कि खेतसेन मारुई का मुंह देखने को तरसता रहेगा।

यहां पर्दा गिरता है। इस प्रकार प्रथम दृश्य में ही लेखक भावी घटनाओं की ओर संकेत कर देते हैं।

दृश्य-द्वितीय स्थान-मलीर

झोंपड़ियों से काफ़ी दूरी पर, कुएं के निकट, वृक्षों की छाया में उमर और फोग खड़े आपस में बतिया रहे हैं। दूर से आ रही गाने की आवाज़ सुनकर दोनों झुरमुटों में छिप जाते हैं। मारुई और उसकी सखियां गीत गाती हुई कुएं पर आ पहुंचती हैं। गीत पूरा होते ही सिर और कमर से घड़े उतारकर धरती पर रखती हैं। फिर इधर-उधर, कोई कहीं और कोई कहीं बैठकर सुस्ताने लगती हैं। उनका आपस में बतियाना आरम्भ होता है। कुछ देर बाद विगन्दु (विदूषक) को आता देखकर सहेलियाँ प्रसन्न होती हैं

कि अब अच्छा मनोरंजन रहेगा। आते ही विगन्दु हंसीठठोली कर सबको हंसाता है। विगन्दु के चले जाने पर सब सहेलियां कुएं से पानी भरने लगती हैं। वे लोग पानी भर रही होती हैं तो उमर झुरमट से बाहर निकल आता है। अनजान पुरुष को देखकर सब डर जाती हैं। उमर कहता है कि मैं सोढा मुसाफ़िर हूं। मुझे पानी पिलाएंगी ? इस पर मारुई उसे पानी पिलाने लगती है और ज्योंही पानी पिला चुकी होती है, कि उमर अवसर पाकर, बाज़ की तरह झपटकर उसे उठाकर भाग खड़ा होता है। मारुई चीख़ने-चिल्लाने लगती है। स्वयं को छुड़ाने का बहुत प्रयास करती है। उमर तो आँख झपकते ही मारुई सहित आलोप हो जाता है। पर मारुई की सहेलियां काफ़ी देर तक चीख़ती-चिल्लाती रहती हैं। चीखना-चिल्लाना और रोना सुनकर खेतसेन वहां आ पहुंचता है। सहेलियों से सारी बातें उसे ज्ञात होती हैं। इसी समय पालणा और मेराडी भी वहाँ आ पहुंचते हैं। खेतसेन मारुई की तलाश में जाता है पर कुछ देर बाद असफल लौट आता है। मारुई की सहेलियों से और पूछताछ करने पर उसे विश्वास हो जाता है कि यह काम फोग का है उसी के कहने पर ही बादशाह उमर सूमरे ने यह निकृष्ट कार्य किया लगता है। खेतसने मारुई को छुड़ाने और बैरियों से बदला लेने का प्रण करता है। लेखक ने इस दृश्य में कुएं के निकट सहेलियों के वार्तालाप द्वारा उमर सूमरे और उसके खानदान की कुरीतियों से पर्दा उठाया है। यह भी दर्शाया है कि उमर, मलीर के सोढा राजपूतों को समय-समय पर सताता था। पालणा, मेराडी, खेतसेन, मारुई और फोग आदि सब सोढा राजपूत हैं।

दृश्य-तृतीय स्थान-उमरकोट

उमरकोट के एक सुसज्जित कमरे में मारुई मैले-कुचैले और पुराने वस्त्र पहने चौकी पर बैठी है। रूखे बाल, उदास मुख, अपने प्रियजनों की याद में बैठी गा रही है। वहां उमर आता है और मारुई को अपने साथ विवाह करने के लिए समझाता है। पर मारुई अपने माता-पिता, सखियों और अपने पुरखों की जन्मभूमि को याद कर विलाप करने लगती है। उमर उसे प्यार से समझाता है, धमकाता है, पर मारुई पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह उमर से विनती करती है कि यदि मैं अपने देश (मलीर) के लिए तड़प-तड़पकर प्राण त्याग दूं, तो इतनी दया करना कि मेरा शव मलीर भेज देना। उमर विवश होकर चला जाता है। मारुई मातृभूमि और अपने देशवासियों को याद करती हुई गाती रहती है।

यहाँ पर्दा गिरता है।

दृश्य-चतुर्थ

स्थान—उमरकोट का वाह्य भाग, उमर के महल की तरफ जाने वाली सड़क। विगन्दु हंसी-मज़ाक करता हुआ वहां से निकलता है।

विगन्दु विदूषक कुछ गा रहा है तो उमर भी वहाँ आ पहुँचता है। दोनों बातें करने लगते हैं। बातों में विगन्दु उमर से स्पष्ट कहता है कि कामांध होकर अपनी समझ खो बैठे हैं। वह सुबक-सुबककर रोता है और कहता है कि उमर के राज्य से बुद्धि के साथ-साथ न्याय भी कब का मर चुका है। उमर कहता है कि हम असली राजपूत हैं और अपने बाहुबल पर जीते हैं, यदि मैं अपने लिए एक स्त्री भगा लाया तो मैंने ऐसा क्या घोर अपराध कर लिया ? न्याय की राह कैसे छोड़ दी मैंने ? इस पर विगन्दु कहता है कि आप बलात् किसी की मंगेतर भगा लाए हैं। मारुई मरते मर जाएगी पर अपना सतीत्व नहीं छोड़ेगी। किब्ला ! सती का सत् कोई राणा अमरसिंह का किला नहीं, जो तीर-तलवार लगते ही भुरभुराती भीत सा डह जाएगा ! जिसे ईश्वर का सहारा हो भला उसका कोई क्या बिगाड़ पाएगा ! उसका तो सात समुद्र भी बेड़ा पार है ! उमर कहता है—मैं तो मारुई के साथ कोई जोर-ज़बरदस्ती नहीं करता, मैं तो उसे प्यार से समझाता हूँ कि मुझ से प्यार करे। इस पर विगन्दु कहता है कि, किब्ला ! प्यार बिकता नहीं है। जो पहले से ही प्यार की ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ हो, उस प्यार को भला लोहे की ज़ंजीरें कौन पहना सकता है ? आपका यदि मारुई से प्यार है तो न्याय पर चलकर उस पर पड़े बन्धनों से उसे मुक्त कर दीजिए। ऐसा कहकर विगन्दु चला जाता है। उधर उमर सूमरा, विगन्द की राय पर सोचता हुआ असमंजस में पड़ जाता है कि मुझे क्या करना चाहिए।

पर्दा गिरता है।

दृश्य पंचम

स्थान-कोट का वाह्य भाग। खाई के आगे सड़क।

(अन्दर से मारुई की दर्द भरी पुकारें सुनाई दे रही हैं)

वह अपने मारुओं को याद कर रही है कि वहां से एक ऊंट सवार निकलता है। वह छिपता-छिपाता किले की तरफ बढ़ता है। मारुई के विलाप सुनकर, उस आवाज़ के सहारे वह मारुई के पास पहुँच जाता है। मारुओं और गाँव का हाल सुनाकर बताता है कि खेतसेन और मैं विगन्दु के साथ आज सूर्य उगते ही पास वाली बस्ती में पहुंच

गए हैं। तुम रोओ मत। जलदी ही तुम्हें बन्धन मुक्त कराने की तरकीबें लगा रहे हैं। मारुई यह सुनकर प्रसन्न होती है। उसे कहती है कि, भाई ! फिर भी तुम मुसलमान पड़ोसी यश के भागी हो। उस भाग फूट फोग ने तो अपनी करतूत कर दिखाई। इस पर ऊंट वाला कहता है-बहन, हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों पोते एक दादा के, फिर आप लागों की लाज क्या हमारी लाज नहीं हुई ?" ऊंट वाला मारुई से विदा लेकर चला जाता है। उधर मारुई भी कोट के कंगूरों से हट जाती है। यहां खेतसेन भी आ पहुंचता है। ऊंट वाला उसे बताता है कि वह मारुई से मिल चुका है, सब ठीक है। खेतसेन भी मारुई से मिलने को आतुर हो जाता है। वह गाने लगता है। जिसकी आवाज़ पहचान कर मारुई फिर कोट के कंगूरों के निकट आ जाती है। दोनों दूर से ही एक दूसरे को देखकर प्रसन्न होते हैं। पहरेदार की आवाज़ सुनकर सब चले जाते है।

पर्दा गिरता है।

दृश्य छठा

स्थान-उमरकोट

(उमर सूमरे के दरबार का दृश्य)

उमर का मुँह उतरा हुआ है। निकट ही मन्त्रीगण, अमीर व प्रतिष्ठित लोग अपने-अपने पदानुसार गाव-तकियों के सहारे गदेलों पर बैठे हैं। फोग भी वहां खास दरबारी बना हुआ बैठा है। एक मन्त्री उमर को बताता है कि मारुई ने कुछ भी खाना-पीना छोड़ दिया है। आपने यह, अच्छा काम नहीं किया है। मैं इसमें आपका साथ नहीं दे सकूंगा। इस प्रकार वह मन्त्री उमर के साथ कहा-सुनी कर दरबार से बाहर चला जाता है। उमर भी इस बात पर चिन्तित है कि एक गंवारिन के सामने हम सब हार चुके हैं। यहां एक दरबान आकर बताता है कि—जहाँपनाह ! रात में कोई मारुई को कोट से भगाकर ले गया है ! कोट के कंगूरे में फंदा लटक रहा है। इससे लगता है कि किसी बाहरी का इसमें हाथ है। इस पर फोग कहता है कि,—किब्ला, यह सीनाज़ोरी ज़रुर किसी सोढा राजपूत की होगी। इसके लिए सोढों को पाठ पढ़ाना ही चाहिए, नहीं तो राज और महाजन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। उमर फोग के भड़काने पर सोढों पर आक्रमण करने के लिए फौज को तैयार करने का आदेश दे देता है।

इस समय दाई आकर उसे बताती है कि मारुई उसकी धर्मबहन है। उमर असमंजस

में पड़ जाता है। आखिर कुछ देर बाद यह निर्णय करता है कि "मारुई के लिए मैं बलिदान अवश्य करूँगा। जिसकी माता का मैंने दूध पिया, उसे अब से मैं अपनी बहन समझूंगा।" उमर ने स्वयं फोग को आदेश दिया कि वह मलीर जाकर मारुओं को बताए कि बादशाह उमर और मारुई का भाई-बहन का सम्बन्ध है। उमर स्वयं आकर आप लोगों के उत्सव में सम्मिलित हो रहा है। फोगसेन भी कसमसाता हुआ इस आदेश का पालन करता है। नाटक का अन्त लेखक ने उमर के मुंह से यह कहलवाकर किया है कि "ईश्वर की लीला ! क्या से क्या कर दिया ! घड़ी भर में कैसा रंग रच डाला। अन्यथा मैं आज किस कार्यवाही के लिए तैयार हुआ था, पर बात किस तरह पलटा खा गई ? विद्वान सच कहते हैं–इनसान सोचता कुछ है, ईश्वर कर कुछ देता है। भाग्य की बात विधाता ही जानें, उसमें भी पीठ अपनी किसी ने घूमकर नहीं देखी है। इनसान अनेक प्रयास करे, पर ईश्वर की तरफ से सफलता किसी और को मिली, तो इस दुर्बल इनसान की योजनाओं की सामग्री, रेत के किले सी उड़ जाएगी ! बस ! यही सांत्वना इनसान के लिए न हो तो इनसान बेचारा पागल हो जावे।"[१८]

श्री लालचन्द ने लोककथा को जिस प्रकार इस नाटक में प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। परन्तु किसी किसी स्थान पर जब वह शाह साहब या गुरुदेव टैगोर के काव्यमय विचार और कल्पना की उड़ान प्रस्तुत करने का माह पालने लगते हैं तब वह अधिक विस्तार में जा पड़ते हैं । वहां पर नाटक में अभिनय तथा कृत्य का अंश घट जाता है और संवाद अधिक लम्बे हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, तीसरे दृश्य में मारुई द्वारा विलाप का वर्णन करते हुए, लगभग 'शाह जे रिसाले' (शाह द्वारा रचित काव्य ग्रंथ) में से सुर मारुई के सब विचार यहां प्रस्तुत किए हैं। उस दृश्य में कृत्य या 'ऐक्शन' बिलकुल नहीं है, जो नाटक के लिए अत्यावश्यक हैं। उसी प्रकार, नाटक के आरम्भ में खेतसेन और मारुई के प्रेमपूर्ण वार्तालाप में खेतसेन के मुंह से गुरुदेव टैगोर की कल्पना की उड़ान प्रस्तुत की गई है। एक ग्रामीण पात्र द्वारा ऐसे गहन विचारों को प्रस्तुत करवाना भी अस्वाभाविक सा लगता है। यहां भी दोनों के संवाद लम्बे हो गए हैं। उदाहरणार्थ खेतसेन और मारुई द्वारा कहे गए ये वाक्य देखिए :–

"मारुई ! मेरा हृदय तो निर्जनता का पक्षी है, उसने अपने लिए आकाश तुम्हारी आँखों में पाया है। मेरे लिए दोपहर के समय हिंडोला भी वही है तो रात्रि को चन्द्रमा तारे भी वही है ! बस ! ईश्वर करे मैं उस आकाश पर, उसकी विशालता में उड़ता रहूं! मैं उसके बादलों को चीरकर सूर्य के साक्ष्य में अपने पंख फैलाता रहूं।

मारुई–"मेरे खेत ! ऐसा मत कहो। तुम तो स्वयं वर्षाऋतु के उपरान्त उमड़ने वाले सुन्दर मेघ हो, जो मेरे सपनों के आकाश में तैर रहे हो। अपनी प्रेमपूर्ण दृष्टि से मैं सदा तुम्हें चित्रित करती रहती हूं, मैं सदा तुम्हें निरखती रहती हूँ !

खेतसेन–"प्रिय ! मैं सच कहता हूँ, जब इन नयनों से विद्युत कड़क कर निकलती है, तब मेरे सीने के काले बादल, मेघ सा गर्जन करने लगते हैं। सच कहता हूँ, मोतिए की प्रथम कली ज्यों खिल उठे वैसे ही तुम्हारे होंठ मनमोहक हैं। बसन्त बीत जाए, तब भी तुम्हारे अंगों से जैसे सुगन्ध आती रहती है ! तुम अपने पदपद्म उस पर घुमाओ तो भूमि सचमुच तम्बूरे सी बजने लगती है ! मैं सच कहता हूँ कि रात्रि की आँखों से ओस की बूँदें भी तुम्हारे देखने से ही गिरती हैं; मैं सच कहता हूँ प्रभात की किरणें गद्गद भी तब होती हैं जब वे तुम्हें देखती हैं।"[१९]

श्री मंघाराम मल्काणी 'उमर मारुई' नाटक के विषय में लिखते हैं–"यह नाटक हैदराबाद चाहे कराची में, बार-बार कर १०-१२ रात्रियां आयोजित किया गया, इस जैसी सफलता अन्य किसी भी सिन्धी नाटक ने प्राप्त नहीं की।... इस नाटक ने इतनी सफलता इस कारण पाई कि निर्देशक उस्ताद हीरानन्द ने ग्रामीण दृश्य-मलीर का कुआं और उमरकोट वाले ऐसी निपुणता से प्रस्तुत किए, और पत्रों को विशेषकर सहेलियों के समूह को वस्त्र, पूर्ण ग्रामीण रंग-बिरंगी पहनाए, कि यह नाटक प्रदर्शन का एक अत्युत्तम उदाहरण बन गया।"[२०]

मारुई के चरित्र से श्री लालचन्द ने इतनी प्रेरणा प्राप्त की है कि लगता है वह उसके साथ मिलकर मानों एकाकार हो गए हैं। स्वयं भी मारुई के समान ही यह इच्छा व्यक्त की कि "मुयाई जियास, जे वञे मढु मलीर डे !" लेखक पर मारुई का अधिक प्रभाव उनके 'अर्पण-पत्र' से प्रकट है, जो पुस्तक के आरम्भ में दिया हुआ है। वह ज्यों का त्यों यहां दिया जा रहा है:–

"अर्पित करता हूँ यह पुस्तक, मेरी लाडली पुत्री देवी, तुम्हें, जिसने यह उमर मारुई की कहानी मुझसे बार-बार सुनी होगी, और जिसका हृदय यह कहानी सुनकर, धापकर भी नहीं धापता था। ईश्वर तुम्हें इतनी शक्ति प्रदान करें कि मारुई के समान तुम्हारे हृदय में भी अपनी जन्मभूमि के लिए स्नेह रूपी सरिता वेग से बहती रहे ! ईश्वर करे तुम भी मारुई के समान शीलबान बनो।"

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस समय लालचन्दजी ने यह नाटक लिखा अर्थात सन् १९२५ में, उस समय देवी मात्र दस वर्ष की थी।

श्री लालचन्द ने दूसरा नाटक 'सुहिणी मेहार' (सोहिनी-महिवाल) श्री डंगू कुन्दनमल थधाणी के साथ मिलकर लिखा, जो सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक के आरम्भ में लालचन्दजी ने जो 'दो शब्द' लिखे हैं, उनसे स्पष्ट है कि वास्तव में नाटक श्री डंगू थधाणी का लिखा हुआ है। लालचन्दजी ने केवल उसकी भाषा को सुधारा है और साधारण सा हेरफेर किया है। वे लिखते हैं, "आठ वर्षों पूर्व की बात है। प्रतिदिन रात के समय मित्रों के साथ हाईकोर्ट के सामने हरियाली पर जा बैठते थे। एक बार 'उमर मारुई' नाटक पर मित्र मण्डली की बात चल पड़ी, प्रशंसा भी बहुत की, पर नाटक की धज्जियां भी कर डालीं। कुछ दिनों पश्चात डंगू मेरे पास एक पाण्डुलिपि लेकर आया। कहने लगा, श्रीमान यह पढ़कर देखिए। 'सुहिणी-मेहार' लिखा था। मुझे रुचिकर लगा। जब मैंने उसे बताया कि—अच्छा लिखा है, तब उसने स्वीकार किया कि लिखने की प्रेरणा उसे मेरे नाटक से मिली।

फिर तो काम में जुट गए। केवल भाषा को सुधारा। नाटक की योजना, विचार चाहे विचारों का प्रस्तुतीकरण वैसा ही रखा गया। भाषा सुधारने के यश का भागी मैं, शेष यश का भागी मेरा मित्र। (श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी, कराची, १५ जनवरी १९३९)?"[२१]

नाटक कला की दृष्टि से यह रचना बहुत साधारण है, और यह नाटक कभी भी मंचित नहीं किया गया। उस समय में भी उसपर कड़ी आलोचना समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी।

श्री लालचन्द का लिखा तीसरा वृहत नाटक 'मीरां' (मीरा) बहुत समय से हस्ताक्षरों के रूप में पड़ा था। उनके देहान्त पश्चात लालचन्दजी की पुत्री देवी ने अक्टूबर १९५४ से बम्बई से "रूह रिहाण" नामक मासिक पत्रिका आरम्भ की। इस पत्रिका के पांच अंक प्रकाशित हुए। अन्तिम अंक अप्रेल १९५५ में प्रकाशित हुआ। उसके बाद यह पत्रिका किन्ही कारणों से बन्द हो गई। श्रीमती देवी ने तृतीय अंक से श्री लालचन्द के नाटक 'मीरां' को किस्तों में प्रकाशित करना आरम्भ किया। उसके तीनं पूर्ण तथा चौथा आधा दृश्य इन अंकों में प्रकाशित हुए। नाटक का शेष भाग अप्रकाशित ही रह गया। अभी तक वह प्रकाशित नहीं हो सका है। इस दृष्टि से यह नाटक अपूर्ण है।

इस नाटक में प्रसिद्ध भक्त मीराबाई के जीवन की कुछ घटनाएं प्रस्तुत की गई हैं। प्रथम दृश्य में दिखाया गया है कि बादशाह अकबर और संगीत सम्राट तानसेन भेस बदलकर चितौड़गढ़ के उस मन्दिर में आए हैं जहां मीरा बाई प्रतिदिन आकर

भजन-कीर्तन करती थी। कुछ देर बाद मीरा बाई सितार लिए हुए भजन गाती हुई मन्दिर की तरफ आती है। उसकी आवाज़ सुनते ही बादशाह अकबर मस्ती में झूम उठते हैं।

दूसरे दृश्य में दिखाया गया है कि मीरा, मन्दिर में भजन गा रही है। भजन पूरा होने पर जब वह मन्दिर की पौड़ियां उतरकर कुछ नीचे आती है तो अकबर और तानसेन उसे दण्डवत् प्रणाम करते हैं। क्षण भर के लिए आत्मिक वार्तालाप पश्चात तानसेन मीरा बाई को फूल देते हैं कि वह भगवान कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख अर्पित करदें। उस समय मीरा बाई की आँखें बन्द हैं। अकबर बादशाह भी चुपचाप अपने कुर्ते के अन्दर से मोतियों का एक नौलखा हार निकालकर मीरा बाई के हाथों पर रखते हैं। मीराजी बन्द आँखों से ही वह भगवान के चरणों में समर्पित कर देती हैं। उसके बाद तानसेन और बादशाह अकबर शीघ्रता से वहां से चले जाते हैं। ऐसी अमूल्य भेंट भगवान के चरणों में किसने अर्पित की है ? यह बात चौतरफ फैल जाती है। आखिर राणा कुम्भा को इस बात की जानकारी हो जाती है। वह मन्दिर पहुंचकर माला उठा लेते हैं।

नाटक के तीसरे दृश्य में दिखाया गया है कि राणा कुम्भा का दरबार लगा हुआ है। राणा मीराबाई से पूछ रहे हैं कि मन्दिर में ऐसी बहुमूल्य भेंट किसने चढ़ाई ? पर इस बात का ज्ञान तो स्वयं मीराबाई को भी नहीं था। दो चित्तौड़ निवासी जो बादशाह अकबर और तानसेन के साथ मन्दिर में थे, दरबार में उपस्थित थे। वे बताते हैं कि सम्भव है उन दो परदेसियों ने यह बहुमूल्य भेंट अर्पित की हो। देश के स्वर्णकारों से पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि यह माला तो दिल्ली के बादशाह अकबर के लिए बनाई गई थी। यह सुनते ही राणा के तन-बदन में आग लग जाती है कि स्वयं अकबर भेस बदलकर आया और हमारे राज्य से सकुशल निकल गया है। मेरी रानी ने एक मुसलमान के सामने कीर्तन किया। राणा क्रोधवश मीराबाई के लिए मृत्यु दण्ड का आदेश देते हैं। पर कोई भी मन्त्री या दरबारी यह आदेश रानी के लिए ले जाने का साहस नहीं करता। अन्त में चित्तौड़ निवासी बड़ी कठिनाई से यह बात मानता है।

चौथे दृश्य में लेखक ने दर्शाया है कि मीरा के हाथों में पति द्वारा भेजा गया मृत्यु का आदेश है। उन्होंने भिखारिनों जैसा भेस धारण किया हुआ है, और चित्तौड़ के बाहर जो जंगल हैं, वहां की एक पगडंडी पर वह जा रही है। राह में उन्हें एक साधु बैरागी मिलता है। उसके पूछने पर वह उसे बताती हैं कि वह वृन्दावन जा रही हैं पर मीरा जिस राह पर जा रही थीं वह एक नदी की तरफ जा रही थी, जिसे वह कभी भी पार

नहीं कर पाएंगी। इस प्रकार यह दृश्य यहां अधूरा ही रह जाता है।

'मीरा' नाटक भी लालचन्दजी ने अपनी अनोखी भाषा और अनुलेख में लिखा है। नाटक का विषय, आत्मज्ञान और मीरा की कृष्ण भक्ति दिखाना है। इस कारण इसमें भक्ति मार्ग का दर्शन भरा पड़ा है। संवाद अधिक लम्बे होना भी नाटक कला की दृष्टि से अस्वाभाविक है। इस नाटक में दर्शन के भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर वाद-विवाद अधिक और अभिनय चाहे कृत्य (action) का अंश कम है।

(६) छोटे नाटक

श्री लालचन्द ने बहुत से छोटे नाटक राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं पर लिखे हैं। जैसा कि-'सेण की वेण' (समधी या बैरी) (१९०६) और 'नगद धर्म' (१९११) ये दोनों दहेज की समस्या पर लिखे हैं, 'भारत जाया उथ उथी जागु' (भारत में जन्मे उठ जाग) (१९१९) राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण नाटक है, जो उन्होंने कराची में न्यू हाई स्कूल में अध्यापन वाले दौर में विद्यार्थियों से प्रस्तुत करवाया था। 'अमलदार कीन रैय्यत आज़ारु' (अधिकारी या जनता को सताने वाले) (१९२०) में उन्होंने सरकारी कार्यालयों में अधिकारियों के व्यवहार पर से पर्दा हटाया है, जो गरीबों और अनपढ़ लोगों को लूटते हैं और रिश्वत लिए बिना सर्वसाधारण का कोई भी काम नहीं करते। 'हैदराबाद सिन्ध' शीर्षक से एक छोटे से प्रहसन में उन्होंने लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध कराने वाली स्त्रियों के कार्य-कौशल का वर्णन किया है, जो अपनी दल्लाली की राशि के लिए दूसरों को गुमराह करती हैं। यह प्रहसन 'महराण' पत्रिका के १९४६ वाले अंक में प्रकाशित है। उसी अंक में उन्होंने 'ससुई पुन्हूं' की प्रसिद्ध लोककथा के आधार पर 'ससुई रुलि मुई' नामक छोटा सा नाटक भी लिखा है। उसमें पुन्हूं की तलाश में ससुई के भटकने और अन्तिम श्वासों के लेने की स्थिति तक पहुंचने का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। अंत में पुन्हूं भी अपने भाईयों से झगड़कर कीच मकरान से भाग निकलता है और भंभोर की तरफ़ जाते हुए उस स्थान पर पहुंचा है जहां ससुई मरणीय स्थिति में पानी-पानी पुकारती हुई तड़प रही है। पुन्हूँ, ससुई की आवाज़ पहचान कर उसकी तरफ दौड़ने लगता है। इसी लोककथा के आधार पर श्री लालचन्द ने एक अन्य छोटा सा नाटक लिखा है जिसका नाम है 'सहिजां जी सिक'। यह नाटक 'महराण' के वर्ष १९४६ के छठे अंक में प्रकाशित हुआ है। लेखक जब ऐसे विषयों पर लिखते हैं, तब स्वतः ही शाह के कलाम से बैत भरते जाते हैं। 'ससुई रुलि मुई' तो शाह के 'डोहीरों' (विरह के

गीत या बैत) से भरा पड़ा है। ससुई जो कुछ कहती है अधिकांशतः बैतों या डोहीरों में कहती है। इन नाटकों में लेखक की भाषा और अनुलेख देखने योग्य हैं। सामाजिक नाटकों में वह पात्रों के स्वभाव को देखकर तदनुसार बोलचाल की भाषा प्रयुक्त करते हैं। लोककथाओं पर आधारित नाटकों में उनकी भाषा कुछ गम्भीर और शाह के प्रभाव से परिपूर्ण हो जाती है। कुछ उदाहरण देखिए–

(i) हैदराबाद सिन्ध[२२]

सम्बन्ध कराने वाली स्त्री– बहिन, लड़का क्या है! शहजादा है शहजादा (शहज़ादा)! जैसी काना (कान्ह) की मूरत ! देखने में सुन्दर, रिलने-मिलने वाला, सुलच्छना-समझदार। बहिन, भाग (भाग्य) वाली हो, जो ऐसा नौलखा दामाद घर बैठे ही मिल रहा है।

लड़की की माँ–हाँ, पर मैं भी तो घर पर बात चलाऊँ, वहाँ भी तो पसन्द आए।

सम्बन्ध कराने वाली–पसन्द क्यों नहीं आएगा ? खानदानी हैं। कोई घसियारे नहीं हैं, हां !

लड़की की माँ–(कुछ सोचकर) अच्छा, मेरी तरफ से हाँ समझो। घर पर भी बात मनवा ही लूंगी।

सं० कराने वाली–हां बहिन। मरद (मर्द) भला अपनी जोरुओं की नहीं मानेंगे ? पर बात सुनी ? दहेज वे अपने शहर की रीत (रीति) का लेंगे। आज तो देखो लल्लू-पंजू को भी न जाने क्या-क्या मिलता है ! इसने तो पब्लिक भी पास किया है। इस साल फाईनर (फाईनल) के लिए भी जाएगा। पढ़ा-लिखा है।

लड़की की मां–खैर, इसके लिए नाक पर मैल नहीं लगाएंगे। पहले रिश्ता तो मन्जूर हो।

सं० कराने वाली– अच्छा अब मैं चलती हूँ। पर बात मत भूलना। (जाती है)

(थोड़ी देर बाद लड़की का भाई आता है)

लड़की की माँ–टिक्या ! अमुक को जानते हो ?

टिक्या–वह कौन ?

लड़की की माँ–अरे, अमुक का बेटा !

टिक्या–हाँ । क्यों ?

लड़की की माँ–कैसा है ? मुन्नी का रिश्ता आया है।

टिक्या–क्या ? वहाँ मुन्नी का रिश्ता कर रही हो ? सावधान माँ ! छोरा दिन भर बाज़ार में पड़ा पंजा-सत्ता करता है। न काम, न काज। और...

(ii) सहिजां जी सिक[२३]

(सहिजां नाम की एक सुनारी, काहिरी (स्थान) के जंगल में पुन्हूं को देखकर उस पर मोहित हो गई। वह उसका पीछा करती हुई भंभोर आ पहुंची)

पुन्हूं— देखो सहिजां, मैंने तुम्हें काहिरी के जंगल में समझाया था अब फिर तुम्हें कह रहा हूँ कि अपनी ज़िद छोड़ दो। सच बात तो यह है कि तुम मुझे याद भी नहीं हो।

सहिजां— (ठण्डी आह भरकर) पर मुझसे तो साजन, तुम भुलाए नहीं जाते। तुम्हारी एक-एक बात प्रिय, मेरे मन में हूक सी जगा रही है। अब देखो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ (वह घुटनों के बल बैठ जाती है) मेरी लाज रखलो, मेरी राहें मत रोको। मेरी लाज रखने वाला और कोई नहीं है, दुनिया दिन-रात मेरी लाज को आँखें फाड़-फाड़ कर घूर रही है। मेरी लाज रख लो। मुझसे हंसो-मुस्कराओ। मुझे अपने जनानखाने में स्थान देने की दया करो, मुझे सताओ मत।

पुन्हूं— लड़की, तुम तो खुद ही पानी से बाहर निकल रही हो। मैं...

सहिजां— हां हां। पर मछली समान मेरे दिल की यह हालत भी तो तुम्हारे घुण्डीदार बालों रुपी कांटी ने की है। मेरे साथी, अगर पीड़ा रूपी डोरी तुम उसे नहीं दो, तो पानी से बाहर वह क्यों निकले ? अब दया करो उसे घृणा से मत निहारो। उसे बिलकुल थूककर मत फैंको, अपना साथ बख़्शो। मुझे अपने प्यार का शहद चखाओ।

(७) निबन्ध

श्री लालचन्द द्वारा लिखे गए निबन्ध भिन्न भिन्न समाचार-पत्रों और सहित्यिक पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होते रहते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें डायरी रखने की भी आदत थी। जो कुछ उन्होंने पढ़ा या सोचा वह अविलम्ब संक्षेप में अपनी डायरी में लिख देते थे। भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे छोटे निबन्ध उन्होंने 'फुलनि मुठि' (मुठी भर फूली) नाम से सन् १९२७ में प्रकाशित करवाकर प्रसारित किए। वे निबन्ध उनके विस्तृत ज्ञान और गहन अभ्यास के साक्षी हैं। उसकी भूमिका में वे स्वयं लिखते हैं, "कोई समय था, जब मैं हर रोज अपनी डायरी में कुछ न कुछ तो लिख ही देता था। मेरा यह स्वभाव अब भी पूर्णतया छूटा नहीं है। अब भी कोई नई बात सुनूं, कोई नई पुस्तक पढूं, समाचार-पत्र में कोई ऐसी बात हो, किसी का संवाद मुझे रूचिकर लगे, फिर चाहे कुछ दिन बीत भी जांएगे, पर अन्ततः उन्हें अन्य विचारों और अनुभवों के साथ जोड़कर डायरी में अवश्य दर्ज कर दूंगा।

अपने ये अंकित विचार, चाहे सुने और पढ़े हुए निबन्धों के सिन्धी में संक्षिप्त वर्णन, मैंने सोचा कि अपनी डायरी से निकाल कर, पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाए जांएगे तो सिन्धी साहित्य को अच्छी सहायता मिलेगी।

पाठकों, आप देखेंगे कि इस 'फुलनि मुठि' में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन, पुरानी समस्याओं की समीक्षा, ऐतिहासिक घटनाओं पर आलोचना, व्यायाम और स्वस्थय पर विचार, विज्ञान की खोजों पर लेख, सब नवीन रंग-रूप में प्रस्तुत हैं । मेरी अपनी ही राह है। जिस राह पर से मैं चल चुका हूं, पुनः उस राह पर मैं चलता ही नही हूं!

फिर चाहे मैं जो कुछ भी कहता हूँ वह जोर-शोर के साथ, तब भी ऐसा व्यक्त नहीं करता कि बस, इस समस्या का 'अन्तिम हल' हो चुका, कि विचारों का प्रवाह इसके पश्चात आगे नहीं बढ़ेगा!

मैं तो स्वयं ऐसे ऐसे स्थान पर विस्तार से बात कर, कठिनाई की तरफ़ पाठक को संकेत कर, उसमें रूचि उत्पन्न करता हूं कि ऐसी बात पर अपने विचारों का सहारा लेकर उसका सन्तोषजनक हल स्वयं ढूंढ निकाले।[२४]

'फुलनि मुठि' में विभिन्न विषयों पर निबन्ध हैं, जैसे कि- 'आसमान जो नज़ारो,' 'सारंग सावण लाया वे' प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करते हैं, तो 'भंभोर', 'चमन-हिन्द (बंगलोर)', और 'नीलगिरि' यात्राओं का मनमोहक वर्णन करते हैं। 'शायर कौन ?'

'शाह और सचल' साहित्यिक विषयों पर लिखे निबन्ध हैं, तो 'इनसान तुच्छ वस्तु' और 'दीन या धर्म' दर्शन और धर्म से सम्बन्धित हैं । 'कुधाई', 'प्रेम', 'उम्मीद', 'सपना' 'माउ बार जो ठाहु', मनोविज्ञान की गहराईयों की समीक्षा करते हैं। 'अकबर आज़म', 'शिवाजी,' और 'कृष्णा कुमारी' जीवन चरित्र हैं। 'आब ह्यातु', 'उस ऐं हवा', 'बदन लाय रवाती ऐं पारस', 'चे, जेकी करे गीहु' निबन्धों के विषय स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं। 'हिन्द जावा, उथ, उथी पहिंजी बरि !' राष्ट्रीयता के विषय पर लिखा प्रभावशाली निबन्ध है। 'अगाटे हन्दुस्तान जा विद्यापीठ या दारुल उलूम' भारत के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला निबन्ध है। 'अचिरज जहिड़यूं रस्मूं ऐं रिवाज' समाज शास्त्र के एक प्रमुख विषय का ज्ञान देता है तो 'गोठनि वारी पैचांयती सरिश्तो' देश की व्यवस्था और राजनीति के क्षेत्र का निबन्ध है। 'कुल्लनि ते विचार' अर्थशास्त्र के एक विषय पर लिखा सुन्दर निबन्ध है।

सिन्धी साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में खोज करते हुए लालचन्दजी ने कुछ निबन्ध लिखे हैं। उनमें से 'सिन्धी अख़्बार निवीसीअ जी तारीख़' अच्छी जानकारी देने वाला निबन्ध है, जो 'सिन्धु' मासिक पत्रिका के अगस्त १९४६ वाले अंक में प्रकाशित हुआ था। सिन्धी भाषा और साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर भी समय समय पर वाद-विवाद छिड़ जाते थे। फिर तो बहुत से विद्वान इस दिशा में समाचार-पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं में अपने विचार व्यक्त करते थे। सिन्धी भाषा में संस्कृत और अरबी-फ़ारसी शब्दों के अधिक प्रयोग ने भी किसी समय एक बड़ी समस्या उत्पन्न कर दी थी। उस पर श्री लालचन्द ने लिखा है :-

"हिन्दुओं को चिन्ता यही है कि सिन्धी (भाषा) को शुद्ध करें। मुसलमान चाहते हैं कि उसे दीन के घोड़े पर चढ़ाएं! अच्छा होता यदि यह शुद्धि और प्रचार उत्पन्न ही न हुए होते जिनके कारण यह सब बखेड़ा हुआ। अब इनके कारण वास्तव में हो क्या रहा है? ठेठ सिन्धी शब्द सिन्धी से निकलते जा रहे हैं और उनका स्थान भरते जा रहे हैं बेजान और बेढंगे शब्द....देखिए तो दोनों की ओर से कैसी कैसी आपत्तियां की जा रही हैं। मुसलमान कहते हैं हमारे बच्चे हिन्दुओं के शब्द 'कटोरे' और 'चाखड़ी' (खड़ऊं) आदि समझ नहीं सकेंगे, इसलिए इनके स्थान पर 'वट्टो' (कटोरा) और 'जूती' (जूती) का प्रयोग करें। हिन्दू कहते हैं, हज़्रत मुहम्मद और हज़्रत अली से हमारा क्या, जो हमारे नन्हें बालकों को उनसे सम्बन्धित बातें बताई जाएं?...मैं पूछता हूं कि आखिर ये लोग चाहते क्या हैं? वे इतना भी नहीं समझ पाते कि इन करतूतों के कारण भाषा

का सम्पूर्ण रस तथा यश ही निकाल रहे हैं। एक व्यक्ति उस दिन किसी स्थान पर व्यायाम के विषय में बता रहे थे–क्या कहते हैं ?

"हे पंहिंजनि छात्रनि जा प्राचीन ऐं अर्वाचीन प्रकार जा व्यायाम डिसी, आसांजिनि अख्युनि अग्यां प्राचीन समय जो दृश्य अच्यो बिहे। असां पाठशालाउन जे संचालिकनि खे विनय था करियूं त उहे व्यायाम पंहिंजनि विद्यालयनि में बि चालू कनि।" पाठक स्वयं निर्णय करें। यह सिन्धी है ?

श्री लालचन्द को घूमने-फिरने का बड़ा चाव था। जब जब भी उन्हें समय मिलता था, वे सिन्ध के भिन्न-भिन्न स्थानों पर चले जाते थे। फिर उनके विषय में आकर्षक ढंग से वर्णन करते थे। साहित्य में इस प्रकार के लेख अपना अलग स्थान रखते हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'Travelogue' कहा जाता है। सिन्धी साहित्य में जब कि अभी इस प्रकार की अधिक पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुई थीं; तब लालचन्दजी ने 'मुसाफ़ीअ जो मज़ो ऐं सैर जो रंगु' (यात्रा का आनन्द और सैर का रंग) नाम से पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने दक्षिण भारत के मुख्य नगरों और पहाड़ों के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए थे। यह पुस्तक बाद में लालचन्दजी ने 'सिन्धी साहित सोसायटी' की मासिक पत्रिका में सन् १९१५ में प्रकाशित करवाई थी। 'फुलनि मुठि' में भंभोर, चमन-हिन्द (बैंगलोर) और नीलगिरि भी इस प्रकार के निबन्ध हैं।

(८) जीवन-चरित्र

श्री लालचन्द ने विशेष व्यक्तित्वों के जीवन-चरित्रों पर छोटे छोटे लेख बहुत से लिखे हैं, परन्तु पुस्तक रूप में लिखी हुई उनकी दो मौलिक रचनाएं मिलती हैं- (१) मुहम्मद रसूल अल्लाह उर्फ़ हज़रत मुहम्मद का जीवन वृतान्त (२) राम बादशाह (स्वामी रामतीर्थ की जीवनी)।

प्रथम उन्होंने सन् १९११ में स्वयं अपने व्यय से प्रकाशित करवाई थी। उस समय वे कराची में मदरसा में अध्यापक थे। दूसरी पुस्तक सन् १९१४ में 'सिन्धी साहित सोसायटी' के बृहत साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित करवाई।

लालचन्दजी की लिखी पुस्तक 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' ने उस समय जितनी प्रसिद्धि अर्जित की उतनी किसी अन्य पुस्तक ने नहीं की। मुसलमानों ने इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत किया और हिन्दुओं ने समझा कि लालचन्दजी बस, दीन के घोड़े

पर चढ़े कि चढ़े। उस समय उनकी आयु मात्र २६ वर्ष थी। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "कुछ को आश्चर्य होगा कि यह हिन्दू, इसने मुसलमानों के नबी (पैग़म्बर) का जीवन वृतान्त क्यों लिखा है। कुछ के मन में विचार आएगा कि बस, वह तो गया हाथ से। अभी शेख़ हुआ। कुछ के मुख से तो ईश्वर यह भी कहलवाएगा कि यह रहा चापलूस! अर्थात जितने लोग उतनी बातें। लोगों के मुंह बन्द होने के नहीं हैं। कुओं के मुंह बंद हो जाँए, पर लोगों के मुँह बन्द नहीं होंगे।

हर वर्ष बहुत से मुसलमान बालकों को मेरे सुपुर्द किया जाता है। मैं देखता हूं कि वे अपने प्रिय नबी के विषय में अधिकांशतः कोरे के कोरे ही हैं। अन्य बहुत ही विचित्र बातें प्रतिदिन सुनते रहते हैं, परन्तु प्रिय नबी के जीवन वृतान्त से सर्वथा अनभिज्ञहैं।

मैंने यह पुस्तक लिखी है कि मुसलमान विशेषतया अल्पायु वालों की आँखें खुलें; और वे अपने प्रिय नबी का जीवन वृतान्त पढ़कर लाभान्वित हों।

हिन्दू होकर, मैंने यह काम करना स्वीकार किया, इसमें क्या बुराई की? मैं हिन्दू हूँ और मेरा हिन्दू धर्म ही मुझे सिखाता है कि हर एक पीर-पैग़म्बर, नबी-वली, साधु-सन्त सम्मान के योग्य हैं।

मुसलमान तो हमारे देशी भाई हैं और उनका भाग्य हमारे भाग्य से जुड़ा है; तब तो आवश्यक है कि हम एक दूसरे के वयोवृद्धों के जीवन चरित्र से परिचित हों, और इस प्रकार स्वयं में भी उनके व्यवहार की राह अपनाएं।"(२६)

इस पुस्तक में श्री लालचन्द ने भाषा भी अत्यन्त सरल प्रयुक्त की है और रोचक ढंग से बातों का वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए—

हज़रत मुहम्मद साहब अल्पायु में ही अनाथ हो गए थे। इसका वर्णन लालचन्द जी इस प्रकार करते हैं-

"जिस शख़्स (व्यक्ति) ने खुद अपने अब्बा की प्यार भरी आँखें नहीं देखी होंगी और अपने प्यारे अब्बा से प्यारी-प्यारी ज़िद्दें नहीं की होंगी, उसके मिश्री जैसे मीठे बोल नहीं सुने होंगे, बल्कि अपने अब्बा की शक्ल ही नहीं देखी होगी, और जो शख़्स बचपन में ही अपनी प्यारी अम्मीं से बिछड़ गया होगा, जो शख़्स खुद जिस उम्र में बाल-चंचलताएं करते हैं, और मां-बाप उन्हें लाडकोड से नचाते-कुदाते हैं, खेल खेलाते हैं, उस उम्र में ही बेचारा बन गया होगा, वह शख़्स ही यतीमों के दिलों (हृदयों) की

उदासी और बेचारों की बेबेसी पर पूरी तरह से विचार कर सकेगा।"(२७)

हज़्रत मुहम्मद सदा मुनबर (भाषण देने का स्थान) की तीसरी सीढ़ी पर खड़े होकर वहां से वअज़ (धर्मोपदेश) करते थे। एक दिन खैरात (दान) के विषय में कहा–

जब खुदा ने धरती पैदा की, तब धरती डरने लगी कांपने लगी। तब से उसे स्थिर करने के लिए उस पर पहाड़ रखे। वहां फिरिश्तों (देवताओं) ने अर्ज (विनती) कीः ए जग के वाली (शासक) ! दुनिया में पहाड़ से श्रेष्ठ भी कोई चीज़ है या नहीं ?

खुदा - लोहा ! लोहा पहाड़ों को काट देता है।

फिरिश्ता- खुदाया! लोहे से बेहतर (उत्तम) भी कोई चीज़ है या नहीं ?

खुदा - हाँ ! आग । आग लोहे को पिघला देती है।

फिरिश्ता - आग से बेहतर भी कोई चीज है या नहीं ।

खुदा- हां । पानी । पानी आग को बुझा देता है।

फिरिश्ता - भला पानी से बेहतर भी कोई चीज़ है ?

खुदा - हां । हवा । हवा चलकर पानी को तरंगित कर देती है।

फिरिश्ता- और हवा से बेहतर भी कोई चीज़ है ?

खुदा– हां । खैरात (दान)। पर खैरात वह, जो दाहिने हाथ से दी जाए, तो बाएं हाथ को उसकी जानकारी नहीं हो।"

'मुहम्मद रसूल अल्लाह' पुस्तक पर सिन्ध के मुसलमान वयोवृद्ध लेखक मिर्ज़ा क्लीच बेग ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा, "हिन्दू होते हुए तुमने यह काम प्रशंसा योग्य ढंग से कर दिखाया है।" (सिन्धी अनुवाद)

(·as a Hindu you have done this work creditably)

मौलवी मुहम्मद उस्मान मुआम अल्फ़का, मदरसा-उलस्लाम कराची ने इस पुस्तक के विषय में लिखा है -

"मिस्टर लालचन्द का यह कार्य निसन्देह अतिप्रशंसा योग्य है, क्योंकि उसने हिन्दूधर्मावलंबी होने पर भी पूर्ण अनुसंधान और न्याय से काम लिया है, जो अवश्य ही उसकी न्यायप्रियता और ज्ञान सम्बन्धी गवेषक होने की साख भरता है। मुसलमान भले ही निर्भय होकर यह पुस्तक क्रय करें और उसका तन्मय होकर अध्ययन करें, क्योंकि यह सही इतिहासों से लिया गया है ।"

(९) रिपोर्ताड़ (रिपोर्ताज)

आज के साहित्य में 'रिपोर्ताड़' (रिपोर्ताज) एक नई विद्या है, जो सामान्य निबन्ध या कहानी से भिन्न प्रकार की है। हिन्दी में इसे 'रिपोर्ताज' कहते हैं। वास्तविक शब्द फ्रांसीसी भाषा का है, जो पश्चात अन्य भाषाओं में भी व्यवहार में आ गया है। अंग्रेज़ी 'रिपोर्ट' शब्द का इससे निकट सम्बन्ध है। ऐसा निबन्ध या वर्णन जिस में किसी घटना-दुर्घटना का, ऐसे अनुलेख में वर्णन किया जाए जो पाठक के सम्मुख हूब-हू वास्तविक चित्र उभर आए, तो उसे 'रिपार्ताज' कहते हैं।

श्री लालचन्द जगत्याणी ने अपने जीवन की अनेक घटनाओं या व्यक्तिगत अनुभवों को कल्पना का कुछ पुट देकर कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है। पर उनकी कुछ ऐसे भी रचनाएं हैं, जो किसी विशेष घटना का वास्तविक चित्र रोचक ढंग से चित्रित करती हैं। 'हुर मुखीआ जा' श्री लालचन्द की एक अमर रचना है जो 'रिपोर्ताज' का एक सुन्दर उदाहरण है। इसे कुछ लेखकों ने कहानी स्वीकार किया है, जो सही नहीं है। 'हुर मुखीआ जा' प्रथम बार १९१० ई. के आस-पास श्री डयाराम जेठमल सिन्ध कालेज की छः माही साहित्यिक स्मारिका में प्रकाशित हुई थी। इस पत्रिका का आरम्भ सन् १९०१ में हुआ था, और श्री साधु वासवाणी उसके प्रथम सम्पादक थे। कुछ वर्षों पश्चात श्री लालचन्द ने जब 'सिन्धी साहित सोसायटी' स्थापित की, तो उसकी प्रथम मासिक पत्रिका के रूप में 'हुर मुखीअ जा' रचना को पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाकर जनवरी १९१४ में प्रसारित किया। उस पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "इस पत्रिका का विषय मैंने 'कालेज स्मारिका' के कहे अनुसार लिखा था, जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पत्रिका में तब ही प्रकाशित किया था। उसमें आवश्यक हेर-फेर करके कुछ सजनों की सम्मति अनुसार लिखी हुई पुस्तक का अधिकार 'सिन्धी साहित प्रचारक' वालों को दिया है, जो फिर से इस आकृति में अपने व्यय से प्रकाशित करवाकर प्रसारित कर रहे हैं। (१ जनवरी १९१४)"[२९]

'हुर मुखीअ जा' (लुटेरे मुखिया के) रचना का आरम्भ श्री लालचन्द ने इस प्रकार किया है "तूं त को हुरु मुखीअ जो आहीं !" (तुम तो मुखिया के कोई लुटेरे हो !) सिन्धी में मुहावरा बन गया है। इन तथाकथित प्रतिष्ठित चोरों, मुखिया के लुटेरों ने १८९५ ई० के समय, पूर्ण सिन्ध, और विशेषकर थरपारकर ज़िले में ऐसा आंतक मचा दिया, और सरकार को ऐसा चकराया और परगने भटकाए कि कोई निपुण कहानीकार

या उपन्यासकार हो तो वास्तविकताओं को एकत्रित कर एक श्रेष्ठ कहानी अथवा उपन्यास की रचना कर डाले। मैं स्वयं में यह साहस नहीं समझता, यद्यपि वास्तविकताएं मेरे पास हैं। मैं केवल वे वास्तविकताएं पाठकों के मनोरंजन के लिए प्रकट कर रहा हूं।"(३०)

गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में लुटेरों की लूटमार और हत्याओं के मारे पूरे सिन्ध में आतंक फैल गया। आरम्भ में केवल पांच अपराधी, अपराध कर पुलिस से भाग निकले और आकर मुखिया की झील पर डेरा डाला। वे थे-बच्चू ख़ासखेली, पीरू सान, तग्यो चांग, ईसो डाहिरी और ख़मीसो वसान। वे पहले से एक दूसरे से परिचित नहीं थे। यह कहावत है कि 'जैसे को तैसा, चौदह, कोस पर भी ढूंढ निकालता है।' वे हत्याएं कर, लूटमार कर जो भागे तो भाग्य से मुखिया की झील पर आकर सब मिल गए। फिर तो समय-समय पर अन्य अपराधी भी जो भाग निकलते थे, वे जाकर उनकी टोली में शामिल हो जाते थे। बच्चू बना टोली का बादशाह तो पीरू बना उसका वज़ीर। डाके मारते हुए दो तीन बार पुलिस से भी उनकी मुठभेड़ हो गई जिसमें पुलिस के भी बहुत से सिपाही मारे गए। आखिर थरपारकर के गोरे डिप्टी कमिश्नर ने उन लुटेरों की टोली को जड़ से समाप्त कर दिया।

उस दौर के सिन्धी समाचार पत्र लुटेरों के कारनामों से भरे पड़े हैं। श्री लालचन्द ने इन वास्तविकताओं को ऐसी मुहावरेदार और सलोनी भाषा में प्रस्तुत किया है, कि उनकी यह रचना अमर हो गई है। यह सिन्धी गद्य के एक आदर्श और प्रभावपूर्ण ढंग को प्रस्तुत करती है।

(१०) समीक्षा

श्री मंघाराम उधाराम मल्काणी ने 'सिन्धी नस्र जी तारीख़' (सिन्धी गद्य का इतिहास) में लालचन्दजी के विषय में लिखा है, "वह विद्वान जिसने सिन्धी समीक्षा को स्वस्थ, क्रमवार प्रस्तुतीकरण की स्थिति प्रदान की वे श्री लालचन्द अमरडिनोमल थे, जिन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं में भी बुनियादी कार्य किया था। उन्होंने ही सिन्धी साहित सोसायटी की प्रथम मासिक पत्रिका का शुभारम्भ किया था, उनका ही सिन्धी लोककथा पर आधारित नाटक 'उमरु मारुई' मंचित किया गया था, उनकी ही प्रथम यात्रा वर्णन की पुस्तक 'मुसाफ़िरीअ जो मज़ो' प्रकाशित हुई थी; और समीक्षा के क्षेत्र में भी 'शहाणो शाहु' उनके द्वारा स्थापित की गई सिन्धी साहित सोसायटी द्वारा १९१४ में प्रकाशित,

प्रथम पुस्तक थी जिसमें विचार चाहे अनुलेख की दृष्टि से विश्वासपूर्ण समीक्षा की गई थी। शाह साहब के कलाम की विशेषताएं भिन्न भिन्न वाक्यों में विस्तार से समझाई गई थीं, और प्रत्येक विशेषता के लिए क्रमवार अनेक उद्धरण भी शाह के बैतों से दिए हुए थे, जिस कारण उस पुस्तक को पढ़ने से प्रथम बार पश्चिमी शैली की समीक्षा का आभास हो रहा था।"[३१]

भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रों और साहित्यिक पुस्तकों में श्री लालचन्दजी के बहुत से समीक्षात्मक निबन्ध और पुस्तकों पर आलोचनाएं प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त पुस्तक रूप में भी इन लेखक की जो समीक्षात्मक रचनाएं प्रकाशित होकर प्रसारित हुई हैं, वे इस प्रकार हैं— सुर केदारो (१९१०), सुर सारंग (१९१०), शहाणो शाहु (१९१४), सोनहारो सचलु (१९१४), बेरंग बाग जे गुल सिन्धी (१९२०), सुर यमन कल्याण (१९२४), जीवन माथर या सुर डहर (१९५६)। इन में 'सोनहारो सचलु' सिन्ध के विख्यात सूफी शायर सचल सरमस्त (१७३९-१८२९) के कलाम की समीक्षात्मक जांच-पड़ताल है और 'बेरंग बाग़ जो गुल सिन्धी' खलीफ़ा गुल छुट गया है जोड़े मुहम्मद "गुल" (१८११-१८५८) के शेर पर आलोचना है। शेष अन्य सब पुस्तकें सिन्धी सूफ़ी शायरों के सिरमौर शाह अब्दुल लतीफ़ भिट्टाई (भिट स्थान) (१६८९-१७५२) के कलाम की जांच-पड़ताल प्रस्तुत करती हैं।

श्री लालचन्द द्वारा की गई आलोचना की मुख्य विशेषता यह है कि वे सर्वप्रथम शब्दों के अर्थ पर विचार कर, उनका शाब्दार्थ समझाकर, तत्पश्चात शेर की कला और गुणों को प्रकट करते हैं। शायर के विचार को समझाने के लिए उसके कलाम से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं और कभी कभी अन्य शायरों के कलाम से तुलना भी करते हैं। एक दो उदाहरण देखिए :-

(१) "सुर यमन कल्याण के परिच्छेद पांचवें में सर्व प्रथम सूफ़ियों के स्वभाव का वर्णन कर, और पश्चात, एक ग्रामीण बात के माध्यम से फिर भी 'वहदतुलवुजूदी' (एकेश्वरवाद) का सिद्धान्त ही प्रकट कर, आकर उसे झकझोर देते हैं। कि-

पढ़ियो था पढ़नि, कड़हनि कीन कुलूब में,
पाणां डोह चढ़नि, जिअं वर्क वराई नि वितरा ।

कि ये विद्वान —

सा सिट न सारीन, अलिफु जंहि जे अग में,
नाहकु निहारीन, पना ब़िया प्रीअं लय ।

सो बैठकर समझाते हैं –

को थो कागजु कोरिऐं, वेठो बिजए मसु,
डोरे तियां ड्रिसु, अखरु जियां आइयो ।

और अपने लिए कहते हैं–

कातिबु लिखे जिअं लायो लामु अलिफ़ सीं,
असां सजणु तिअं, रह्यो आहे रूह में।

उसी सुर के छठे परिच्छेद में, और सुर खंभात के प्रथम परिच्छेद में, और सारे सुर आसा में आकर जो वे माशूक (प्रियतम) की मदिह (प्रशंसा) और इश्क (प्रेम) और आशिक (प्रेमी) के विस्तार में छूटते हैं, सो तो एक प्रयास मात्र है! सुर कल्याण के द्वितीय परिच्छेद में स्वयं कहा है –

'असां इबादत नज़र नाज़ु प्रिन जो ।'

अर्थात हम आशिकों (प्रेमियों) की इबादत (उपासना) यह है कि प्रिन (जिससे प्रेम हो) के नाज़-नख़रे देखकर, सदा उनकी ही प्रशंसा गाते रहें। इसका पूरा अनुसरण (पैरवी) यहां करते हैं।

कि-'सूरत संदूयनि साल' (साल=उज्जवल, स्वच्छ)

सूरत संदूयनि साल पाण मुसाह्बु सिपरीं,
मौला डिननि मुहं में नूरी नेण निहाल,
सन्दे ख़्वाब ख़्याल मूं मनु मस्तानो कयो।
नज़र नज़्दीक्यूं सही न सघां साईंत सीअं,
पसणु प्रिन सन्दों आउं नाले ॻेड़े निझरां ।

कुछ लोग कहेंगे कि यह व्यर्थ इश्कबाज़ी है, और पूछेंगे कि इसके माध्यम से भला शायर ने कौन से सूक्ष्म और उच्च विचार निर्णित किए हैं। उन्हें चाहिए कि यह बैत कुछ ध्यान से पढ़ें और परखकर देखें कि शायर क्या कहता है।

सन्दे ख़्वाब ख़्याल मूं मनु मस्तानों कयो।
"और"
पसणु प्रिन सन्दों आउं नाले ॻेड़े निझरां ।

इसका अर्थ यह है कि मेरा ईष्ट ऐसा आभायुक्त है कि मैं स्वप्न रूपी बेहोशी में ही सो रहा हूं अर्थात संसार महाजाल में ही पूर्णतया फंसा हुआ हूं, तो भी उसकी सुन्दर छवि और गर्वयुक्त नयनों के विचार मात्र ने मेरा मन बेवस कर दिया है, और

मैं उसका नाम ले लेकर ऊँघ रहा हूं, यदि उसके साक्षात दर्शन हो जाएं तो मुझे अपनी सुधबुध ही न रहे, रचकर लाल हो जाऊं।"

(शहाणो शाहु ५८-६०) (३२)

(२) सुता उथी जगु, निंड न कजे एतिरी,

सुलतानी सुहागु, निंडनि कंदे न थिये।

सुलतानी सुहागु = वह सुख जो जीवात्मा को प्राप्त हो, तब परामात्मा से मिलकर एकाकार हो।

सामी भी ऐसा ही लिखते हैं-

सुहागुण साईं, जंहिंखे सिक अन्दर में,

जागी करे जगु सां जीअंदे जुदाई,

इस दिशा में दूसरे भी किसी विद्वान ने कहा है।

जाग्या तनि जसु, सुम्हियनि सझु विञायो।

(सझु = अवसर)

की सुम्हुं की जागु, निंड न कजे एतरी,

ईउ मांझादे जो मागु, जो तो साण्हे भाइयो।

(मांझादे जो मागु = कुछ देर के लिए विश्राम स्थल। साण्हे = वतन)

इस जगत में स्थायी रूप से तो रह नहीं सकेंगे। बस, दाना-पानी पूरा हुआ नहीं कि चलाचली होगी। याद रखो कि यह संसार तुम्हारा स्थायी देश नहीं है, तुम्हारा स्थायी देश वहां है जहां -

'सच खण्ड वसह निरंकार' (जीवन माथर पृष्ठ ३८-३९)

(सच्चे निराकार प्रभू बसते हैं)

(११) शेर (कविता)

सिन्धी साहित्य में श्री लालचन्द को मुख्यतः एक श्रेष्ठ गद्य लेखक के रूप में जाना जाता है। यह कुछ लोग ही जानते होंगे कि उन्होंने अच्छी नज़्में "दीन" उपनाम से भी लिखी हैं। 'चोथ जो चण्डु' उपन्यास में भी उनके रचे कुछ शेर मिलते हैं। सन् १९४० में उनके द्वारा सम्पादित "माणक, मोती, लाल" का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने पुराने और आधुनिक शायरों के शेर से चयन कर यह संग्रह तैयार किया है। उसमें पुराने शायर हैं-शाह, सचल, गुल सामी, रूहल, कासिम, इनायत और करीम।

आधुनिक शायर हैं-कलीच, खाकी, ग़रीब, मुहम्मद, खूब, मेंघ, नियाज़ और दीन। पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। "दीन" नाम से लालचन्दजी ने अपने चयनित शेर और बैत दिए हैं। इस संग्रह की भूमिका में श्री लालचन्द ने कुछ ऐसे बिन्दु दिए हैं जो उनके व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को स्पष्ट-रूप से प्रकट करते हैं। वे लिखते हैं -"पाठकों चाहे पाठन करने वालों से केवल यह विनती है कि वे बैठे-बिठाए प्रत्येक बैत से कहीं आत्मिक अर्थ न निकालें।

जो बैत स्पष्ट हैं, वर्णनात्मक या पीड़ोत्पादक हैं, उनका व्यक्त अर्थ ही उनके लिए पर्याप्त होगा। उदाहरणार्थ, "गरीब" के 'लूनारियन वारा', "दीन" के 'पंसारी' और 'धोबी' वाले बैत स्पष्ट वर्णित हैं, इनके लिए भी कोई श्रीमान ज़िद करेगा कि इनमें आन्तरिक रहस्य रखा हुआ है, तो उसका निबटारा कैसे होगा !...

शेर में दूसरा रस बहुत है, पाठन कराने वालों को चाहिए कि छोटी आयु वालों को आरम्भ में उसका आनन्द दिलाएं। विद्यालयी चाहे महाविद्यालयी कामों में शेर के अभ्यास पर इसलिए ज़ोर दिया जाता है कि विद्यार्थियों में रस परख का भाव उत्पन्न हो, इसलिए सिन्धी शेर पढ़ाते हुए, परिश्रमी अध्यापक आन्तरिक अर्थ को छोड़कर, अपने विद्यार्थियों में यदि यह सूझबूझ उत्पन्न करें कि अक्षरों के साधारण-साधारण अन्तरों, मुहावरों और कहावतों के बारीक अर्थों, और अनुलेख के ढंग और विचार के सूक्ष्म वर्णन की जांच-पड़ताल भली भांति किस प्रकार की जाए, तो अपनी मातृभाषा में उनके विद्यार्थी दक्ष हो जाएं, फिर ऐसे प्रशिक्षण के सहारे, उन्हें अन्य किसी भी परायी भाषा के पूर्ण और सन्तोषजनक अधययन करने में कोई कठिनाई तो आ ही नहीं सकती।"[३४]

श्री लालचन्द के लिखे कुछ शेर देखिए –

(१) पाछो जिएं पुछ्यां, तीअं आशिक पुछ्यां सजणी; सचु सुञातो ससुईअ,
बियो लखु लधो लीलां; मेहर संदीअ मुहब्बत में सुहिणी थी सेलान;
सौ शाबसुँ मूमल खे जहिं कन्धु कयो कुर्बान;
हुइ न मिटाई मारुईअ, जा मारुनि हिनसि मथां;
सबकु सिखु इतां, इश्क जे अस्बाब जो ।

(२) जिअं सा डिए लाट उलटी पिणु मथे बरे,
तिअं मूं हिंएं वाट, सदा सांप्रेन डे।

(३) दिल त झलि दिलशेर दिलबर !
छो थियो आहीं दिलगीरु तूं ?

मुड़िसु थी, मर्दानगी सिखु,
    मञ्जु मिट्ठी तकदीर तूं।
हथि न ईंदुइ की पिटण,
    रोइण किंझण, कुड़िकण मंझां,
सबुरु, तहम्मुल, धर धीरजु,
    दिल खे डे दिलधीर तूं ।
बहु हस्तीअ में बिहणु,
    ऐं मौज मस्तीअ खां डिजणु,
कीन जोधनि जुगाए
    यांद कर तहरीर तूं ।
हे मथां इनसान जे
    हर वक्त मुश्किल प्या अचनि ।
वञु घुंघिरजी कीन
    वरहि ! का हलाइ तदबीन तूं,
रात रंजनि जी विहाणि,
    रोज़ रोशनु जगु खिल्यो ।
दुख कनां सुख "दीन" हासिलु,
    समुझु ए तफ़्सीर तूं ।

(१२) बाल-साहित्य

श्री लालचन्द के जीवन का अधिकांश समय अध्यापन में व्यतीत हुआ। इस कारण छोटे बालकों से उनका गहरा सम्बन्ध रहा। बाल मनोविज्ञान का उन्हें विशेष ज्ञान था। कुछ वर्ष वे बालकों की पत्रिका 'गुलिस्तान' के सह सम्पादक भी रहे थे । इस कारण उन्होंने बालकों के लिए शिक्षाप्रद कहानियां, छोटे छोट लेख, जीवन चरित्र, चुटकुले, हंसी-मज़ाक और गीत आदि भी लिखे हैं। बालकों के लिए लालचन्दजी द्वारा लिखी गई रचनाएं 'गुलिस्तान' के कई पर्चों में प्रकाशित हैं । उन्होंने अपने बचपन के जीवन की कई घटनाएं विशेष रूप से बालकों के लिए लिखी हैं। इसके अतिरिक्त बम्बई आने के पश्चात जो पाठ्य पुस्तकें प्राथमिक कक्षाओं के लिए तैयार कर प्रकाशित करवाईं, उनमें भी उनके लिखे कई सरल लेख सम्मिलित हैं। बालकों का मनोरंजन करने वाली उनकी एक हास्य रचना 'गुलिस्तान' के जुलाई १९४० के अंक में प्रकाशित हुई थी। उदाहरणार्थ वह यहां दी जाती है—

दुबट्टू, दुबट्टू, दुबट्टू. ![३५]

अंग्रेज़ी कक्षा चार में फारसी नहीं, मैंने ली संस्कृत । एक दिन हमारे संस्कृत के अध्यापक आए ही नहीं। हमें आदेश मिला कि जाकर परशियन की कक्षा में बैठें।

फारसी, काका......पढ़ाते थे। स्वयं फारसी के अच्छे विद्वान, पर विद्यार्थियों को पांच-आठ मिन्ट जैसे-तैसे पढ़ाकर कहते थे, बैठकर देहाराओ ।

हम संस्कृत वाले, कक्षा में प्रविष्ट हुए तो विद्यार्थियों की गरदन आगे-पीछे झूलने की क्रिया चल रही थी।

बैंचें उन दिनों छठी कक्षा तक होती थीं बिना पीठ की, और दीवार के सहारे तीन तरफ ही रखी रहती थीं।

हम जाकर अन्तिम बैंच् पर बैठ गए तो क्या देखते हैं, कि पास वाली बैंच पर सूरत लम्बूस का सिर-धड़ झूल रहा था, और वह ऊंची आवाज़ में कहे जा रहा था-दुबट्टू, दुबट्टू, दुबट्टू, दुबट्टू, दुबट्टू ...

काका.....की इस बीच शायद आँख लग गई थी।

लड़कों को अच्छा अवसर मिल गया, ऐसा शोर होने लगा मानों किसी दलालों के बाज़ार में खड़े हों।

काका श्री, बिलकुल ऊंघ रहे थे। सूरत लम्बूस का वही दुबट्टू, दुबट्टू, दूबट्टू ऊंची आवाज में बोलना यथावत था !

किसी क्षण काका....की आंख खुली तो एक बार 'सर्च लाईट' की भाति चौतरफ गरदन घुमाकर, वहीं के वहीं सफेद डिबिया को झटकाकर नाक में नसवार चुटकी चढ़ाई,...रूमाल से नाक भी नहीं पोंछी...कुर्सी से उठकर, सूरत लम्बूस का कान पकड़कर डांटते हुए उससे पूछा- अरे ओ बैल ! यह दुबट्टू, दुबट्टू क्या लगा रखी है ?

काका की डांट पर पूरी कक्षा में शान्ति छा गई। सूरत लम्बूस ने, हिकायत लतीफ़ (पुस्तक) के पहले पाठ में 'दोज़न तिफ्ल' वाली प्रथम पंक्ति के प्रथम के प्रथम अक्षर पर अंगुली रखकर झट से उत्तर दिय-सर, फारसी शब्द 'दो', सिन्धी अर्थ हुआ 'ब' इसके लिए अंग्रेजी शब्द 'टू'। तो 'दुबट्टू नहीं हुआ ? पूरी कक्षा हा हा हा कर हंसने लगी। हंसी काका....को भी आ गई !

उसके मुंह पर अपना पंजा जमाकर कहा-छोरा, बस दुबट्टू, दुबट्टू करते रहोगे क्या? आगे भी बढ़ोगे या नहीं ?

यहां घंटा पूरा हो गया। घन्टा बजा, और काका चले गए। पर सूरत लम्बूस फिर भी दुबट्टू, दुबट्टू, करता रहा ।

फिर तो सूरत पर नाम ही दुबट्टू, दुबट्टू, पड़ गया।

(ब) अनुवाद

गत शताब्दी के उतरार्ध में सिन्धी गद्य में जो प्रगति हुई, उसमें अनुवाद का विशेष हाथ था। यूं कहा जाए, कि वह दौर ही अनुवाद का था। बीसवीं शती के सिन्धी गद्य में भी अनूदित रचनाओं की संख्या बहुत है। अनुवाद के माध्यम से अन्य भाषाओं की उच्चकोटि की रचनाओं से भी पाठक अवगत होते हैं। फिर उनसे प्रेरणा पाकर बहुत से लेखक अपनी मातृभाषा में भी नवीनशैली की मौलिक रचनाएँ लिख सकते हैं। वास्तव में देखा जाए तो अनुवाद करना भी एक कला है, सुन्दर अनुवाद करना हरेक के बस की बात नहीं है।

श्री लालचन्द जगत्याणी ने हमें न केवल मौलिक रचनाएं दी हैं बल्कि उन्होंने कुछ पुस्तकें अन्य भाषाओं से भी सिन्धी में अनुवाद की हैं। वे भी ऐसी प्रतीत होती हैं मानों मौलिक रचनाएं हैं। उनके द्वारा अनूदित पुस्तकें सिन्धी गद्य के उच्चकोटि के ग्रंथ हैं। श्री लालचन्द के अनुवाद की विशेषता यह है कि वह मूल रचना की भावना को आत्मसात् कर, उसे अपनी मुहावरेदार सुन्दर सिन्धी भाषा में प्रस्तुत करते हैं। इस कारण उसमें से मौलिक रचना जैसा ही आनन्द आता है। उनके द्वारा मुख्यतः अनूदित पुस्तकें इस प्रकार हैं–

(१) लज्जावती–यह श्रीमति घोषाल की एक बंगाली रचना का अनुवाद है। यह सन् १९२० में 'सिन्धी साहित सोसायटी' की मासिक पुस्तक-पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुई थी। इसमें गृह जीवन का वातावरण है, जिसमें लज्जावती अपनी सास द्वारा दी गई यातनाओं और पीड़ाओं के कारण अन्ततः अपने प्राण त्याग देती है।

(२) बरोनो–ईसाई धर्म के एक पादरी का जीवन चरित्र है। यह भी सन् १९२० के आस-पास इस सोसायटी की मासिक पुस्तक-पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुआ था।

(३) सोन वरन्यूं दिल्यूं–आई०एडहर नामक लेखक के अंग्रेजी उपन्यास 'Hearts of Gold' का सिन्धी अनुवाद है, जो प्रथम बार श्री जेठमल परसराम ने अपने द्वारा स्थापित नवीन सिन्धी लाईब्रेरी की ओर से सन् १९२५ में प्रकाशित किया था। उसका द्वितीय संस्करण भी उसी क्रम में १९२८ में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात तृतीय संस्करण 'सिन्धी अदबी बोर्ड', हैदराबाद सिन्ध की ओर से श्री लालचन्द की द्वितीय बरसी पर सन् १९५६ में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात भी इसके दो संस्करण १९७२

और १९७९ में प्रकाशित हुए हैं। न केवल इस उपन्यास का विषय रोचक है और प्रभावपूर्ण है, बल्कि इसमें लालचन्दजी द्वारा प्रयुक्त भाषा भी पठन योग्य है। भाषा और अनुलेख की दृष्टि से यह अनुवाद सिन्धी गद्य में उच्चस्थान प्राप्त है।

(४) सच तां सदिके–यह पुस्तक श्री लालचन्द द्वारा सन् १९२२ में कराची जेल में रहते हुए Cardinal Wiseman की पुस्तक Fabiola अथवा 'The Church of the Catacombs' का सिन्धी में अनुवाद किया गया था। पुस्तक का विषय ईसाई धर्म से सम्बन्धित है। उसमें दर्शाया गया है कि प्राचीन ईसाई लोगों ने सत्य पर न्योछावर होकर कैसे-कैसे कष्ट-पीड़ाएं झेली थीं। भाषा की दृष्टि से यह अनुवाद भी सिन्धी में उच्चस्तरीय माना जाता है।

(५) सदा गुलाब–महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रसिद्ध रचना 'The Gardener' का श्री लालचन्द ने सन् १९३० में सिन्धी अनुवाद प्रस्तुत किया है। महाकवि टैगोर के सूक्ष्म विचारों और कल्पना की उड़ान को लालचन्दजी ने जिस कोमलता और मुहावरेदार भाषा में प्रस्तुत किया है, उसने इस पुस्तक को सिन्धी गद्य में एक अनोखा स्थान प्रदान किय है। टैगोर से प्रभावित होकर श्री लालचन्द ने कुछ अपने भी 'सदा गुलाब' उसमें जोड़ दिए हैं।

(६) प्रेम जो बलु–E.W.Savi के अंग्रेजी के एक उच्च कोटि के उपन्यास का सिन्धी अनुवाद श्री लालचन्द ने तब किया था, जब मार्च १९५३ में वे स्वयं अत्यन्त अस्वस्थ थे और बिस्तर पर थे। पुस्तक का मुख्य विषय बाल मनोविज्ञान है। बड़ों को बालकों, कोमल फूलों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, उसकी सुन्दर ढंग से व्याख्या की गई है।

(७) लगु नन्ढो, जीउ घणो–इस पुस्तक का सम्बन्ध स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों से है। अंग्रेजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'Look Younger, Live Longer' जिसके मूल लेखक Gayelord Hauser हैं, उसका सिन्धी अनुवाद किया हुआ है। पहले यह पुस्तक किस्तों में 'हिन्दुवासी' साप्ताहिक में वर्ष १९५३ के अंकों में प्रकाशित हुई थी। फिर जब अप्रेल १९५४ में श्री लालचन्द अन्तिम श्वासें ले रहे थे, तब उसी माह 'हिन्दुस्तान किताब घर' वालों ने प्रकाशित करवाकर प्रसारित की। इस पुस्तक के अनुवाद में लालचन्दजी ने स्वास्थ्य और दवाईयों से सम्बन्धित बहुत से तकनीकी शब्दों के लिए सिन्धी के सही शब्द ढूंढ निकाले हैं। कुछ शब्द नए बनाकर

भी उन्होंने प्रयुक्त किए हैं। भाषा की दृष्टि से यह रचना भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

(स) अप्रकाशित रचनाएँ

श्री लालचन्द जगत्याणी के जीवन से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए जब उनकी सुपुत्री श्रीमती देवी रामचन्द गुलराज से भेंट हुई, तब उन्होंने इन महान लेखक की न केवल अनुपम रचनाएं पढ़ने के लिए दीं बल्कि उनकी अप्रकाशित रचनाएं भी दिखाईं। देश के बटवारे के पश्चात बम्बई आकर बसने के बाद भी लालचन्दजी साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेते रहे। अन्तिम समय में बिस्तर पर होते हुए भी उन्होंने अपनी लेखनी का साथ नहीं छोड़ा। दुख इस बात का है कि उनकी कुछ रचनाएं अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी हैं। उनमें से मुख्य हैं–

(१) जेल की डायरी–

श्री लालचन्द जब सन् १९२२ में राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण जेल की सज़ा भोग रहे थे, तब वे, वहां के जीवन के सम्बन्ध में अपने अनुभव डायरी में दर्ज करते रहते थे। ये अनुभव अभी तक हस्ताक्षरों के रूप में उनके वारिसों के पास उपलब्ध हैं।

(२) ससुई पुन्हूं नाटक

मारुई की भांति ससुई के चरित्र ने भी लालचन्दजी को बहुत प्रभावित किया। उसके जीवन पर आधारित दो छोटे-छोटे नाटक 'महराण' में प्रकाशित करवाए थे, जिनका वर्णन पूर्व में किया ज चुका है। ये हैं–'ससुई रुलि मुई', और 'सहिजां जी सिक'। 'उमरु मारुई' नाटक के बाद लेखक ने 'ससुई पुन्हूं' पर भी नाटक लिखना आरम्भ किया। उसके कुछ अंश 'महराण' में प्रकाशित किए। पर शेष भाग अप्रकाशित ही रह गए हैं।

(३) सिन्धी साहित जो निचोड़ (सिन्धी साहित्य का सारांश)

सन् १९५१ में श्री लालचन्द ने सिन्धी साहित्य के विकास पर सरसरी रूप से दृष्टि डालते हुए उसकी मुख्य-मुख्य धाराओं और लेखकों का इस रचना में वर्णन किया है। इसका सारांश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा वालों ने हिन्दी में अनुवाद करवाकर प्रकाशित करवाया है। पर मूल सिन्धी रचना अभी तक हस्ताक्षरों के रूप में ही पड़ी है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विविध छोटी रचनाएं, गीत आदि हैं, जो प्रकाश में नहीं आ सके हैं। ये, श्री लालचन्द की सुपुत्री के पास अपने प्राणों से भी अधिक सम्भालकर रखे हुए हैं।

अध्याय चतुर्थ

जीवन-दर्शन, भाषा और अनुलेख

(१) जीवन-दर्शन

श्री लालचन्द ने अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण का वर्णन किया है। भिन्न-भिन्न विषयों पर उनकी आस्थाओं, विश्वासों और विचारों की जानकारी उनकी रचनाओं से मिलती है। यहां संक्षेप में उनका वर्णन किया जा रहा है।

लालचन्दजी बी०ए० में दर्शन के विद्यार्थी थे। इस कारण उन्होंने इस विषय का गहन अध्ययन किया। उसके पश्चात भी वे भिन्न-भिन्न धर्मग्रंथों और दर्शनशास्त्र के जिज्ञासु रहते रहे। ऐनी बीसेन्ट के प्रभावाधीन उन्होंने थियासॉफ़ी के सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया और इस सोसायटी के सदस्य बने। वे स्वयं हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्तों तथा दर्शन में विश्वास रखते हुए, अन्य सभी धर्मों को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं कि, हिन्दू होकर मैंने यह पुस्तक लिखने का कार्य अपने हाथ में लिया, उसमें कैसी भूल ?" मैं हिन्दू हूं, और मेरा हिन्दू धर्म ही मुझे सिखाता है कि पीर-पैगम्बर, नबी-वली, साधु-संत सम्मान के योग्य हैं।"[१] आगे चलकर दूसरी पुस्तक 'सच तां सदिके' की भूमिका में लिखते हैं, "दुनिया में प्राचीन अथवा प्रचलित धर्मों का जितना मैंने अभ्यास किया है, उसके अनुसार मेरी तो यही समझ में आया है कि आधारभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से कोई भी धर्म किसी अन्य के विरुद्ध नहीं है। इतना अवश्य है कि अक्षरों के फेर में जो अड़ेगा, और उनके गुणों को समझेगा ही नहीं, वह यह समझेगा कि एक अकब्बर, तो दूसरा मकब्बर जा रहा है। वैसे यथार्थ को पहचानने का तो ज्ञान हो, कि "सहसीं रंगनि में सुहिणों बेरंगी बन आयो"

(सहस्र रंगों में, सुन्दर (प्रियतम/ईश्वर) बेरंग बन आया)

"अच्छा हो ईश्वर प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, पारसी चाहे क्रिसतान, सबको इतनी समझ दे, कि अधिकार के लिए मन को न दुखाए, सत्य पर न्योछावर हो जाए।"[२]

ईश्वर को पाने के अभिलाषी दरवेशों, पीरों-फ़क़ीरों में भी लालचन्दजी की बहुत

आस्था थी। अपने कर्मनिष्ठ जीवन में भी वे दराज़न (स्थान) के फ़कीर सख़ी कबूल मुहम्मद के पक्के श्रद्धालु थे। दरवेशों की करामातों (चमतकारों) में भी उनका विश्वास था, इसके प्रमाण कई स्थानों पर मिलते हैं।

राष्ट्रीय क्षेत्र में श्री लालचन्द गांधीवाद में विश्वास रखते थे। स्वयं जब तिलकालय स्कूल के प्रिन्सीपल थे तब अपने स्कूल के एक अध्यापक ग़ुलाम दस्तगीर मिर्ज़ा की लिखी पुस्तक 'महात्मा गांधी' की भूमिका में वे लिखते हैं–"महात्मा गाँधी अपने सानी स्वयं हैं। इनकी सत्यनिष्ठा का क्या बखान किया जाए ! सत्य के स्वरुप, धर्म के देवता, प्रेम और नम्रता तो उनके नयनों से टपकते हैं ! शरीर के कुछ हलके-फुलके हैं, पर वे अथाह शक्ति और दृढ़ निश्चय वाले कितने है ? भला वे जो कुछ करते हैं क्या अपने अधिकार के लिए ? उन्हें अपना कोई लाभ-लालच तो है ही नहीं ! जिन्होंने सोहिनी की भांति अन्य सब प्रयास छोड़ दिए, जिन्हें अभिलाषा है तो केवल अपने महिवाल की–नहीं नहीं इससे भी अधिक-जो बैरी को भी अपना मित्र समझे, जिन्हें मृत्यु का भय तो है ही नहीं ! उनका हृदय सदा पवित्र है और सदा धर्म पर दृढ़ विश्वास है, फिर भला उनके कार्य क्यों न सिद्ध होंगे ?"[३]

श्री लालचन्द हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्के हिमायती थे। "बई पोटा हिक डाडे जा"[४] में स्पष्ट लिखते हैं कि पहले हिन्दू और मुसलमान साथ रहते थे, उनके हृदय मिले हुए थे, पर आज वह पहले वाला प्रेम नहीं रहा है। यदि इनसान, इनसान के साथ इनसान सा व्यवहार करे, इनसान हैवान न बने, अपने-पराये को एक सा समझे तो फिर ये झगड़े, ये दंगे-फसाद ही न हों।

सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ रखने के सम्बन्ध में भी वे भारत की उन्नति के लिए महात्मा गांधी के विचारों को सही समझते हैं। 'गोठनि वारो पंचायती सरिश्तो' (ग्रामों की पंचायती व्यवस्था) नामक निबन्ध में विस्तार से वाद-विवादकर अंततः इस निर्णय पर पहुंचते हैं, कि जो चाहते हैं कि हिन्दुस्तान फिर से शक्तिशाली बने, उन्हें चाहिए कि सुधार का कार्य गांवों से आरम्भ करें। वहीं जब नींव डाली जाएगी, तब ही हिन्दुस्तान, प्रतिष्ठित देश के रूप में, संसार के उज्वल भविष्य में अन्य देशों के साथ साझेदार हो सकेगा !"[५]

'बुख जा चक' नामक निबन्ध में लेनिन के साम्यवादी विचारों पर भी वे सोचते हैं, "निर्वाह-पद्धति यदि आरम्भ की जाए, जो हर मनुष्य को उसकी आवश्यकता अनुरूप मिलता रहे और हर व्यक्ति अपनी योग्यता अनुसार कार्य करे, तो फिर सारा क्रम ही बन जाए!

परन्तु इस पद्धति में भी त्रुटियां निकाली जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, अभी जो लोगों को अपनी व्यक्तिगत सम्पति के लालच में, कार्य और कष्ट के कारण जो स्थायित्व मिलता है फिर तो वह सर्वथा समाप्त हो जाएगा और यदि वह स्थायित्व की बात नहीं रही तो फिर कोई भी व्यक्ति परिश्रम से क्यों काम करेगा।

इससे तो अन्ततः सबको और देश को ही हानि होगी !

तब फिर प्रश्न उठता है कि करना क्या चाहिए ? बातें तो दोनों ही कठिन हैं!"[६]

बटवारे पश्चात भारत आने पर जब श्री लालचन्द ने देश में कोई विशेष सुधार नहीं देखा, तब उनके विचारों में कुछ अन्तर आया, उन्होंने कुछ लेखकों के सम्मुख यह विचार प्रकाट किया कि भारत सरकार यदि देश की काया पलट करना चाहे तो कारख़ानेदारों, पूंजीपतियों और बड़े व्यापारियों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जो लेनिन ने रूस में ऐसी हस्तियों के साथ किया था।

शिक्षा के क्षेत्र में श्री लालचन्द लड़कियों को उच्चशिक्षा दिलाने के अत्यन्त प्रचारक थे। ऐसे विचार उन्होंने अपने लेखों में भी व्यक्त किए हैं। बच्चों को शिक्षा देते समय अध्यापकों द्वारा उन्हें पीटने के वे सर्वथा विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि बालकों को प्रेम-पुचकार से सिखाया जा सकता है। उनके द्वारा अनूदित अन्तिम उपन्यास 'प्रेम जो ब़ुलु' (प्रेम की शक्ति) का मुख्य विषय यही है।

लालचन्दजी को अपनी जन्मभूमि की पवित्रता से अत्यन्त प्यार था। उनके लेखों में जहाँ-तहाँ मातृभूमि के लिए स्नेह उच्छलता हुआ बह रहा है। उनकी अन्तिम अभिलाषा कि—मेरे फूल सिन्धु (नदी) में प्रवाहित किए जाएं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मारुई उनके लिए एक आदर्श है।

जीवन के लिए श्री लालचन्द का दृष्टिकोण सुख-दर्शी वाला है। जीवन माथर में कहते हैं, "मै अपने स्वभाव से दुख-दर्शी नहीं हूं। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि जीवन रसीला है।" (पृ० ५१)[७] इस पुस्तक में उन्होंने यह भी स्पष्ट कहा है कि संसार से अन्ततः सब को चलना है, इनसान का शरीर नश्वर है। इस लिए इस जीवन में इनसान अपना कर्म करे, कर्तव्य का पालन करे, आगे लाज निभाना उस (ईश्वर) पर है।

(२) भाषा और अनुलेख

श्री लालचन्द की रचनाओं वाले अध्याय में उनकी भाषा और अनुलेख सम्बन्धी उदाहरण कई स्थानों पर दिए गए हैं। इसलिए यहां केवल संक्षेप में उनकी मुख्य-मुख्य विशेषताओं की तरफ संकेत कर रहे हैं।

लालचन्दजी ने सिन्ध के सूफ़ी शेर का गहन अध्ययन किया था, विशेषतया शाहलतीफ और सचल के तो प्रेमी थे। इस कारण उनकी भाषा का प्रभाव इन पर अत्याधिक है। शाह लतीफ़ के कलाम से प्राचीन सिन्धी शब्द, व्याकरण के रूप, सर्वनाम के अन्त वाले शब्द, वाहन शब्द आदि बहुतायत से लालचन्जी ने अपनी भाषा में इस आकर्षक ढंग से प्रयुक्त किए हैं कि पढ़ते समय आनन्द की अनुभूति होती है। न केवल इतना बल्कि उन्होंने अपने समय की बोलचाल की भाषा को भी नहीं भुलाया है। साधारण स्त्रियों और ग्रामीण स्त्रियों की भाषा में जो ठेठ सिन्धी शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन्हें भी लेखक महोदय ढूंढकर वार्तालाप में उचित स्थान देते हैं। इसके अतिरिक्त सिन्धी मुहावरों और कहावतों का भी प्रभावपूर्ण प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है। श्री लालचन्द अरबी-फ़ारसी और संस्कृत के कठिन शब्दों से सर्वथा दूर रहते हैं। इन भाषाओं के केवल वही शब्द प्रयोग में लाते हैं जो सिन्धी में व्यवहार में आ गए हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे कुछ नवीन समास और नवीन शब्द स्वयं जोड़कर प्रयुक्त करते हैं।

अनुलेख की दृष्टि से उनका यह विशेष गुण है कि विषय, पात्र और वार्तालाप के अनुसार भाषा में बात करने के ढंग और उपभाषा में अन्तर लाना। बालकों के लिए लिखेंगे तो अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग करेंगे, यदि स्त्रियां वार्तालाप करेंगी तो भाषा भी वही प्रयुक्त करेंगे जिससे प्रतीत होगा कि सचमुच हम किन्ही स्त्रियों का वार्तालाप सुन रहे हैं। प्रकृति चित्रण, दृश्य या किन्हीं घटनाओं के चित्र प्रस्तुत करते हुए लालचन्दजी वर्णन की ऐसी शैली अपनाते हैं जिस से कि वह चित्र हू-ब-हू आंखों के सम्मुख सजीव हो उठता है। श्री लालसिंह अजवाणी ने इनकी भाषा और अनुलेख का वर्णन इस प्रकार किया है–

"श्री लालचन्द अमरडिनोमल ने अर्धशताब्दी तक लगातार इस प्रकार का सिन्धी गद्य लिखा, जैसा पहले किसी ने भी नहीं लिखा था। उन्होंने अपने लेखों में परायी भाषाओं के शब्दों और कल्पना का सर्वथा बहिष्कार किया और ऐसे ठेठ सिन्धी शब्दों का प्रयोग किया, जिनसे सिन्ध की साधारण स्त्रियां और ग्रामीण लोग भली भांति परिचित थे। उनका अनुलेख सरल और साधारण होते हुए भी बहुत बढ़िया और प्रभावशाली था। लालचन्दजी प्रायः शाह और सचल के कलाम में से कितने ही शब्द और वाक्य लेकर अपनी भाषा में प्रयुक्त करते थे। पाठक को उनके लेख में लगभग गद्यांश में ऐसे मुहावरे और कहावतें मिलते थे, जिन की पहले उसे जानकारी नहीं थी।"

(सिन्धी अनुवाद)

(Lalchand Amardinomal wrote, Steadily, for half a century, Sindhi prose of a kind not attempted before. He eschewed all exotic words, phrases and images in his prose and employed only Sindhi words, familiar to women and the rural folk. His diction was simple, chaste and stately, and many of his phrases were derived from Shah and Sachal. Almost everyone of his paragraphs furnished to the reader proverbs and idioms which were not known to him before.")

(History of Sindhi Literature. p. 198)

निसन्देह इन महान लेखक की रचनाएँ, भाषा, शैली और विषय के व्यक्त करने का ढंग, हर दृष्टि से हमारे लिए उदाहरण हैं, आदर्श हैं। लालचन्दजी की शैली की सुगन्ध ही निराली है। उसमें से उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। लालचन्दजी आप सचमुच एक महान व्यक्ति थे। आप अपने लेखों में अब भी जीवित हैं और सदा जीवित रहेंगे। आपके यश रूपी शरीर को वृद्धावस्था अथवा मृत्यु से कोई भय नहीं है। वह अजर है, अमर है, अटल है।

हमें यदि अपनी मातृभूमि से प्यार है तो हमें चाहिए कि लालचन्दजी के अप्राप्य अमूल्य रत्नों को पुनः प्रकाश में लाएं, जिससे कि नई पीढ़ी भी उनकी आभा, उनकी चमक-दमक का दृश्य देख सके।

उद्धरण

अध्याय प्रथम

(१) मामतोरा, आसानन्द, 'श्री लालचन्द अमरडिनोमल' लेख, हिन्दुवासी बम्बई। २५ अप्रेल १९५४ (पृ. ३)।

अध्याय द्वितीय

(१) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'दाणे दाणे ते मुहिर', सिन्धी टाईम्स पब्लिकेशन, उल्हासनगर - ३, जुलाइ' १९८३ पृ. ६७.

(२) वही पृ. ७२.

(३) गिदवाणी पार्वती और जगत्याणी लालचन्द (सम्पादक), गुलिस्तान (मासिक पत्रिका), कराची, दिसम्बर १९३९. पृ. ६.

(४) वही जुलाई १९४०. पृ. १०.

(५) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'जीवन माधर' बम्बई, १९५६, भूमिका पृ. ४.

(६) वही पृ. ९.

(७) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल 'दाणे दाणे ते मुहिर', सिन्धी टाईम्स पब्लिकेशन, उलहासनगर-३, १९८३. पृ. ५३.

(८) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'जीवन माधर' बम्बई, १९५६, भूमिका (जीवन लेखा) पृ. ५.

(९) *सदारंगाणी, गुली. आर. (सम्पादक) गुलिस्तान, 'हैहिरो बि को नींगरु' लालचन्द* जगत्याणी, अक्टूबर १९४३. पृ. ९.

(१०) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, (सम्पादक) 'महराण', 'सावधान ! खबरदार ! अचेव थो...!' जनवरी-जून, १९४८, कराची. पृ. ६८.

(११) राजपाल, बूलचन्द वसोमल (सम्पादक), 'सिन्धु' मासिक, 'सिन्धी अखबार निवीसीअ जी तवारीख'-लालचन्द जगत्याणी, शिकारपुर सिन्ध, अगस्त १९४६. पृ. २५.

(१२) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, (सम्पादक) 'महराण' कराची, अगस्त १९४७, 'सम्पादक की टिप्पणी' पृ. ४१.

(१३) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'जीवन माथर' भूमिका 'जीवन लेखा' बम्बई १९५६. पृ. १५.

(१४) जोयो, मुहम्मद इब्राहीम, एम. (सम्पादक) 'महराण' हैदराबाद सिन्ध, शीतकाल-१९५५. पृ. २०२.

(१५) वही 'महराण - २', १९५६, २६९.

(१६) वही पृ. २७१.

(१७) वही पृ. २७४.

(१८) राशदी, अली मुहम्मद, 'ऊहे डींह, ऊहे शींह' (संस्करण तृतीय), हैदराबाद सिन्ध, १९८१. पृ. २२९.

(१९) मल्काणी, मंघाराम उधाराम, 'साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं' सिन्धी टाईम्स, उल्हासनगर-३ वर्ष १९७९ पृ. ६५ और ६७.

(२०) अजवाणी लालसिंह एच्छ., 'रूह रिहाण' अप्रेल १९५५, बम्बई. पृ. ११ और १२.

(२१) अजवाणी, लालसिंह एच्छ., 'हिस्ट्री आफ सिन्धी लिट्रेचर' साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, १९७०. पृ. १९७.

(२२) उत्तमचन्दाणी, सुन्दरी, 'रूह रिहाण', 'इक़ार' कहानी, बम्बई, अप्रेल १९५५. पृ. ६.

अध्याय तृतीय

(१) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'चोथ जो चण्डु', भारत जीवन साहित्य मण्डल, हैदराबाद सिन्ध, अप्रेल १९४७, आरम्भ, पृ. १-२.

(२) वही पृ. ३.

(३) वही पृ. ५८-५९.

(४) वही पृ. १७.

(५) वही पृ. १००.

(६) वही पृ. ५९-६०.

(७) वही पृ. १-२.

(८) वही पृ. ५४.

(९) वही पृ. २१, २२, २३.

(१०) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'नन्ढिड़ी नयनां कहाणी पब्लिकेशन्स, बम्बई [जून १९५९] पृ. ११-१२.

(११) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, (सम्पादक) 'महराण' कराची सिन्ध [मई-जुलाई, १९४६] पृ. ५७-५९.

(१२) गिदवाणी पार्वती टी. और सदारंगाणी गुली आर. (सम्पादक) 'गुलिस्तान' मासिक पत्रिका कराची, मई १९४५ पृ. ७.

(१३) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'दाणे दाणे ते मुहिर,' सिन्धी टाईम्स पब्लिकेशन, उल्हासनगर-३. जुलाई' १९८३. पृ. ४२-४५.

(१४) गिदवाणी पार्वती और जगत्याणी लालचन्द (सम्पादक) 'गुलिस्तान' मासिक कराची पृ. ८.

(१५) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, (सम्पादक) 'महराण', कराची. जुलाई १९४७ पृ. २१.

(१६) वही, अगस्त १९४७ पृ. २९-३०.

(१७) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'उमरु मारुई', रवीन्द्रनाथ लिट्रेरी एण्ड ड्रामाटिक क्लब, हैदराबाद सिन्ध १९२५. पृ.-१ (भूमिका).

(१८) वही पृ. १०५-१०६.

(१९) वही पृ. २-३.

(२०) मल्काणी, मंघाराम उधाराम, 'सिन्धी नस्र जी तारीख़, कूंज पब्लिकेशन, बम्बई. १९६८ पृ. १८१.

(२१) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल और थधाणी, डंगू कुन्दनमल, 'सुहिणी मेहार' कराची. १९३९. पृ. - १.

(२२) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल (सम्पादक) 'महराण' कराची, अगस्त-अक्तूबर १९४६ पृ. ४०.

(२३) वही 'महराण' अप्रेल १९४६. पृ. २८.

(२४) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'फुलनि मुठि' हैदराबाद सिन्ध १९२७ भूमिका पृ. १-२.

(२५) गुलराजाणी, जेठमल परसराम (सम्पादक) 'भारतवासी' हैदराबाद सिन्ध. 'सिन्धी ॿोलीअ सां अंधेरु' लालचन्द जगत्याणी का निबन्ध, अंक ३० अगस्त, ६ सितम्बर १९२५.

(२६) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' उर्फ़ 'हज़रत मुहम्मद जे हयातीअ जो अह्‌वालु' कराची १९११ आरम्भ पृ. १-२

(२७) वही पृ. १०-११

(२८) वही पृ. ६७-६८

(२९) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'हुर मुखीअ जा', सिन्धी साहित प्रचारक सोसाइटी, हैदराबाद सिन्ध १९१४ पृ-१

(३०) वही पृ. ३-४

(३१) मल्काणी, मंघारामं उधाराम, 'सिन्धी नस्र जी तारीख़, कूंज पब्लिकेशन, बम्बई, १९६८ पृ. ३४४-३४५.

(३२) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'शहाणो शाहु' सिन्धी साहित सोसायटी, हैदराबाद सिन्ध १९१४ पृ. ५७-६०.

(३३) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'जीवन माथर' बम्बई १९५६ पृ. ३८-३९.

(३४) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, (सम्पादक) 'माणक, मोती, लाल', कराची (संस्करण द्वितीय) १९४० भूमिका पृ. १-२.

(३५) गिदवाणी पार्वती और जगत्याणी लालचन्द, (सम्पादक) 'गुलिस्तान' मासिक पत्रिका जुलाई १९४० पृ. १०-११

अध्याय चतुर्थ

(१) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' कराची १९११ भूमिका पृ. २.
(२) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'सच तां सदिके' कराची १९२२. भूमिका पृ. १-३.
(३) मीरज़ा गुलाम दस्तगीर, 'महात्मा गांधी' कराची भूमिका पृ. १-२.
(४) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'दाणे दाणे ते मुहिर', सिन्धी टाईम्स पब्लिकेशन उल्हासनगर-३, जुलाई १९८३ पृ. ४७-५१.
(५) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'फुलनि मुठि' हैदराबाद सिन्ध १९२७, पृ. १६६.
(६) वही पृ. ८.
(७) जगत्याणी, लालचन्द अमरडिनोमल, 'जीवन माथर' बम्बई १९५६ पृ-५१.
(८) अजवाणी, लालसिंह एच्छ. 'हिस्ट्री आफ़ सिन्धी लिट्रेचर, 'साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, १९७० पृ. १९८.

श्री लालचन्द की चयनित रचनाएँ

१. उपन्यास

(१) 'चोथ जो चण्डु' (प्रथम संस्करण १९०५-१९०६, अन्तिम संस्करण १९४७)

(२) 'किशनीअ जो कष्टु' (१९१७)

२. कहानियां

(१) 'डुखनि डुथी जिन्दगी' (१९२५)

(२) 'नौ वरनीअ जो खून' (१९२३)

(३) नन्ढिरी नयना (१९४६)

३. संस्मरण

(१) 'चोरीअ जो ठिकरु' (गुलिस्तान, दिसम्बर १९३९)

(२) ब़ाराणी समझ (गुलिस्तान-फरवरी १९४०)

(३) दुबटू ! दुबटू ! दुबटू ! (गुलिस्तान-जुलाई १९४०)

(४) हैहिड़ो बि को नींगरु ! (गुलिस्तान-अक्टूबर १९४३)

(५) जिन आहिन ? (सिन्धु-मई १९४५)

(६) ब़ाराणे क्लास में पहिर्‌यो डींहुं

(७) छोकरी मूं भजाई छा !

(८) ब़ुई पोटा हिक डाडे जा

(९) दाणे दाणे ते मुहिर

(१०) सावधान, खबरदार, अचेव थो ! (महराण १९४८)

४. रेखा चित्र

(१) अम्मीं सुकार (गुलिस्तान, मई १९४२)

(२) हक़ीक़त अफ़साने खां वधीक, सिन्धु, जनवरी १९४२)

(३) खाजनि पिस्तनि जी मानी (गलिस्तान जुलाई १९४२)

(४) खुद सख़्ता सदरु मन्सिफु (महराण १९४६)

(५) तिलोक टेमी, (महराण १९४७)

(६) न वधु, बच्चू, (महराण १९४७)

(७) मूं बि संगतीअ में की त डिठो हो (महराण १९४७)
(८) असांजो नांअं चढ़यो हेडमास्तरु (महराण १९४७)

५. नाटक

(१) उमरु मारुई (१९२५)
(२) सुहिणी मेहार (डंगूमल थधाणीअ सां गडु १९३९)
(३) मीरां नाटक (रुह रिहाण १९५४-१९५५)

६. छोटे नाटक

(१) सेण की वेण (१९०६)
(२) नकद धर्म १९११
(३) स्वदेश (?)
(४) भारत जावा उथु, उथी जागु (१९१९)
(५) अमलदार कीन रैय्यत आज़ारु (१९२०)
(६) वचनु (?)
(७) गाँधी (?)
(८) बसन्ती देवी (?)
(९) हैदराबाद सिन्ध- १९०३ (महराण, १९४६)
(१०) सहिजां जी सिक (महराण, १९४६)
(११) ससुई रुलि मुई ! (महराण, १९४६)

७. निबन्ध

(१) मुसाफ़्रीअ जो मज़ो ऐं सैर जो रंगु (१९१५)
(२) फुलनि मुठि (१९२७)
(३) सिन्धी अख़्बार निवीसीअ जी तवारीख़, (सिन्धु, अगस्त १९४६)

८. रिपोर्ताज

(१) हुर मुखीअ जा (१९१४)

९. जीवन-चरित्र

(१) मुहम्मद रसूल अल्लाह (१९११)
(२) राम बादशाह (१९१४)

१०. समीक्षा

(१) सुरु केडारो (१९१०)

(२) सुरु सारंगु (१९१०)
(३) शहाणो शाहु (१९१४)
(४) सोनहारो सचलु (१९१४)
(५) बे रंगी बाग़ जो गुल सिन्धी (१९२०)
(६) सुरु यमन कल्याण (१९२४)
(७) जीवन माथर या सुरु डुहर (१९५६)

११. शेर

(१) माणक, मोती, लाल (सम्पादित) (प्रथम संस्करण १९२७, द्वितीय संस्करण १९४०)

१२. बाल साहित्य

'गुलिस्तान' के अंकों में प्रकाशित गीत, निबन्ध, आदि।

१३. अनुवाद

(१) लज्जावती (१९२०)
(२) बरनो (?)
(३) सोन वरन्यूं दिल्यूं (१९२५)
(४) सच तां सदिके (१९४०)
(५) सदा गुलाब (?)
(६) प्रेम जो बलु (१९५३)
(७) लगु नन्को, जीउ घणो (१९५४)

अप्रकाशित रचनाएं

(१) जेल जी डायरी
(२) ससुई पुन्हूं नाटक
(३) सिन्धी साहित जो निचोड़